पूरे चाँद की रात

कृष्णाचन्द्र एम. ए.

राजपाल एण्ड सन्ज़, नई सड़क, दिल्ली

अनुवादक

प्रकाश पण्डित

मूल्य

तीन रुपया

प्रकाशक : इण्डियन बुक कम्पनी लिमिटेड, दिल्ली

मुद्रक : गान्तर प्रेस, मोरीगेट, दिल्ली

सूची

दो शब्द

कृष्णचन्द्र यद्यपि उर्दू के कहानीकार हैं लेकिन उनका नाम भारत की प्रत्येक भाषा के साहित्य-प्रेमी के लिये जाना-पहचाना नाम है, और यह कृष्णचन्द्र की असाधारण सर्वप्रियता का बहुत बड़ा प्रमाण है कि उनकी कहानियां देश के प्रत्येक भाग में पढ़ी और पसंद की जाती हैं।

यों तो हर व्यक्ति अपने प्रिय लेखक की रचनायें बड़े ध्यान से और ढूंढ़-ढूंढ़ कर पढ़ता है, लेकिन एक अनुवादक एक-एक पंक्ति, बल्कि एक-एक शब्द पर विचार करता है ताकि कहानी की आत्मा दूसरी भाषा के कलेवर में प्रवेश करके कुम्हला न जाय, घायल न हो जाय। मैंने कृष्णचन्द्र की निम्नलिखित पुस्तकों का उर्दू से हिन्दी में अनुवाद किया है:—

(१) पराजय

(२) मछली जाल

(३) मोबी

(४) पूरे चांद की रात (जो आपके हाथ में है)।

और मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि वह क्या चीज़ है जिसने कृष्णचन्द्र को समस्त भारत का इष्ट और लोकप्रिय कहानीकार बना दिया है।

पहली चीज़—उनका विशाल अध्ययन है, जीते-जागते जीवन का अध्ययन है। इसी कारण से कृष्णचन्द्र की कहानियों के पात्र

किसी एक स्थान, किसी एक धर्म और किसी एक वर्ग में सीमित नहीं हैं बल्कि वे यहां वहां हर जगह फैले हुए हैं। यही चीज़ उनकी कहानियों में रंगारंग विचित्रता उत्पन्न करती है और हम कभी उनकी कहानियों से उकताते नहीं। यह कृष्णचन्द्र के समूचे जीवन के विशाल और गहरे अध्ययन ही की देन है कि वह कभी अपने पात्रों को उनके वातावरण और समाज से अलग करके उपस्थित नहीं करते, क्योंकि वह जानते हैं कि जब मछली जल से निकाल कर धरती पर लाई जाती है तो वह निर्जीव हो जाती है। और चूंकि वह अपने पात्रों को दिनचर्य्या के जीवन के साथ उपस्थित करते हैं इसलिये उनके पात्र अपने वातावरण और समाज की "आलोचना" होते हैं। यह विशेषता प्रेमचन्द और कृष्णचन्द्र में समान रूप से मौजूद है।

दूसरी चीज़ जो कृष्णचन्द्र के पास है वह कहानी कहने की कला है और इसमें उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। कृष्णचन्द्र की कलात्मक निपुणता केवल इस बात में निहित नहीं है कि वह अपने पात्रों को पहचानते हैं बल्कि इसमें भी है कि वह अपने पाठकों को भी पहचानते हैं और अपने पात्र पाठकों में से ही चुनते हैं। परिणाम स्वरूप आप यह समझते हैं (और बिल्कुल ठीक समझते हैं) कि कहानीकार प्रत्यक्ष रूप से आपसे बात कर रहा है, और वह कहानी जो उसने अभी-अभी आप को सुनाई है स्वयं आप ही की या आपके किसी साथी की या किसी आप ही से व्यक्ति की या किसी इस प्रकार के व्यक्ति की कहानी है जिसे आप अच्छी तरह जानते हैं।

यहां मुझे यथार्थवाद (Realism) के सम्बन्ध में एक बात बहुत स्पष्ट रूप से कहनी है और वह यह कि सलीके और प्रभावशाली ढंग में बात कहना बहुत आवश्यक है। भोंडे, अप्रिय और फुसफुसे ढंग को अपनाने से, जो आप कहना चाहते हैं वह भोंडा, अप्रिय और फुसफुसा हो जाता है और भोंडी, अप्रिय और फुसफुसी चीज़ से घृणा उत्पन्न हो जाना अस्वाभाविक नहीं। इस सम्बन्ध में कृष्ण-

चन्द्र की शैली के बारे में मुझे यह कहना है कि आप केवल उनकी कड़वी से कड़वी बात सुनना पसंद ही नहीं करते बल्कि इसकी आपको और इच्छा होती है; और इसका कारण कृष्णचन्द्र के कला-कौशल्य के साथ-साथ हार्दिक विमलता और मानव-मित्रता है जिससे आपके भाव वंचित नहीं हैं। कृष्णचन्द्र आपके ये भाव जगाकर आपको अपनी कहानी की रौ में बहा ले जाते हैं।

अन्त में मैं कृष्णचन्द्र के तीखे और बेबाक व्यंग्य के सम्बन्ध में भी दो शब्द कहना चाहता हूं जो उनके पास बहुत ही प्रभावशाली हथियार है। व्यंग्यकला (Satire & Sarcasm) बहुत मुश्किल कला है और एक तूफ़ानी नदी के एक हाथ चौड़े पुल को पार करने से कम ख़तरनाक नहीं। ऐसे पुल पर ज़रा सी चूक का अर्थ मृत्यु होता है और व्यंग्य की असफलता भी कहानी की मृत्यु के बराबर है। लेकिन कृष्णचन्द्र अपनी लेखनी को, अपनी कहानियों के वातावरण को खूब अच्छी तरह पहचानते हैं। इसलिये उनका व्यंग्य न कभी असफल होता है न अप्रिय, बल्कि भरपूर होता है।

कृष्णचन्द्र की कहानियां भारत की आत्मा की आवाज़ हैं। वे अन्याय, अत्याचार और लूट-खसूट के विरुद्ध आपको अपने कर्त्तव्य का अनुभव कराती हैं जिसके शिकार केवल कृष्णचन्द्र के पात्र ही नहीं स्वयं आप भी हैं।

"शाहराह"　　　　　　　　　　—प्रकाश पण्डित

देहली

१५-१२-५०

: १ :

पूरे चांद की रात

अप्रैल का महीना था। बादाम की डालियां फूलों से लद गई थीं और वायु में बरफीली ठंडक के बावजूद वसंत-ऋतु की सी सुन्दरता आ गई थी। ऊंची-ऊंची चोटियों के नीचे मख़मल जैसी दूब पर कहीं-कहीं बरफ़ के टुकड़े सफ़ेद फूलों की तरह खिले हुए नज़र आ रहे थे। अगले मास तक ये सफ़ेद फूल इसी दूब में समा जायेंगे और दूब का रंग गहरा सब्ज़ हो जायेगा; और बादम की शाखाओं पर हरे-हरे बादाम पुखराज के नगीनों की तरह झिलमिलाने लगेंगे। और नीले-नीले पर्वतों के चेहरों से कुहरा छुटता चला जायेगा; और इस झील के पुल के पार पगडंडी की धूल मुलायम भेड़ों की जानी-पहचानी बा-आ से झनझना उठेगी;और फिर इन ऊंची-ऊंची चोटियों के नीचे चरवाहे भेड़ों के शरीरों पर से शरद-ऋतु की पली हुई मोटी गफ़ ऊन कतरते जायेंगे और गीत गाते जायेंगे।

लेकिन अभी अप्रैल का महीना था। अभी चोटियों पर पत्तियां न फूटी थीं। अभी पर्वतों पर बरफ़ का कुहरा था। अभी पगडंडी की छाती भेड़ों के स्वर से न गूंजी थी। अभी समल की झील पर कमल के दीए न जले थे। झील का गहरा सब्ज़ पानी अपनी छाती के भीतर उन लाखों रुपयों को छुपाये बैठा था जो वसंत-ऋतु के आगमन पर एकाएक इसके स्तर पर एक सरल, मृदु हंसी की तरह खिल उठेंगे। पुल के किनारे-किनारे बादाम के पेड़ों की शाखाओं पर कलियां चमकने लगी थीं। अप्रैल की अन्तिम रात्रि में, जब बादाम के

फूल जागते हैं और वसंत ऋतु के सूचक बन कर झील के पानी में अपनी नौकायें तैराते हैं; फूलों के नन्हे-नन्हे शिकारे पानी के स्तर पर नृत्य करते हुए वसंत ऋतु की प्रतीक्षा में हैं।

पुल के जंगले का सहारा लेकर मैं देर से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। तीसरा पहर समाप्त हो गया था और सन्ध्या उतर आई थी। झील वुल्लर को जाने वाले हाऊस-बोट पुल की पथरीली महराबों के बीच में से निकल गये थे और अब क्षितिज की रेखा पर कागज़ की नाव की तरह कमज़ोर और बेबस नज़र आ रहे थे। सन्ध्या की लालिमा आकाश के इस छोर से उस छोर तक फैलती गई और फिर लालिमा सुर्मई और सुर्मई से स्याह होती गई, यहां तक कि पग-डन्डी भी बादाम के पेड़ों की पंक्ति की ओट में सो गई और फिर रात की चुप्पी में पहला सितारा किसी पथिक के गीत की तरह चमक उठा। वायु की शीतलता असह्य होती गई और नथने उसके बरफीले स्पर्श से सुन्न हो गये।

और फिर चांद निकल आया।

और फिर वह आ गई।

तेज़-तेज़ पग उठाती हुई, बल्कि पगडन्डी की ढलवान पर दौड़ती हुई, वह बिल्कुल मेरे समीप आ कर रुक गई, फिर धीरे से बोली :

"हाय!"

उसका श्वास तेज़ी से चल रहा था। बीच में रुक जाता, फिर तेज़ी से चलने लगता। उसने मेरे कन्धे को अपनी उंगलियों से छुआ और अपना सिर वहां रख दिया। और उसके काले केशों का घना जंगल मेरी आत्मा के भीतर दूर तक फैलता चला गया। और मैंने उससे कहा :

"तीसरे पहर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

उसने हंस कर कहा, "अब रात हो गई है, बड़ी अच्छी रात है यह।"

उसने अपना कोमल, नन्हा सा हाथ मेरे दूसरे कन्धे पर रख दिया—जैसे बादाम के फूलों से लदी हुई टहनी झुक कर मेरे कन्धे पर सो गई।

देर तक वह चुप रही। देर तक मैं चुप रहा। फिर वह आप ही आप हंसी, फिर बोली "मेरे अब्बा पगडंडी के मोड़ तक मेरे साथ आये थे क्योंकि मैंने कहा, मुझे डर लगता है। आज मुझे अपनी सहेली राज्जो के घर सोना है। सोना नहीं जागना है। क्योंकि बादाम के पहले फूलों की खुशी में हम सब सहेलियां रात भर जागेंगी और गीत गायेंगी। और इसी लिये तो तीसरे पहर से इधर आने की तैयारी कर रही थी। लेकिन धान साफ करना था और कपड़ों का यह जोड़ा, जो कल धोया था, आज सूखा न था। इसे आग पर सुखाया। और अम्मा जंगल से लकड़ियां चुनने गई थी, वह अभी आई न थी; और जब तक वह न आती मैं मक्की के भुट्टे और सूखी खूबानियां और जरदालू तुम्हारे लिये कैसे ला सकती थी। देखो, यह सब कुछ लाई हूँ तुम्हारे लिये। तुम तो सचमुच नाराज़ खड़े हो। मेरी तरफ़ देखो, मैं आ गई हूँ। आज पूरे चांद की रात है। आओ, किनारे से लगी हुई नाव खोलें और झील की सैर करें।" उसने मेरी आंखों में झांका और मैंने उसकी प्रेम और हैरानी में डूबी हुई पुतलियों की ओर देखा, जिनमें इस समय चांद चमक रहा था, और यह चांद मुझसे कह रहा था—"जाओ नाव खोल कर झील की सैर करो। आज बादाम के पहले फूलों का खुशी भरा त्यौहार है। आज उसने तुम्हारे लिये अपनी सहेलियों, अपने अब्बा, अपनी नन्ही बहिन, अपने बड़े भाई—सब को धोखे में रखा है, क्योंकि आज पूरे चांद की रात है और बादाम के श्वेत और शीतल फूल बरफ़ के

गोलों की तरह चारों ओर फैले हुए हैं। और काश्मीर के गीत, बच्चे के दूध की तरह, उसकी छातियों में उमड़ आये हैं। तुमने उसकी गरदन में मोतियों की यह सतलड़ी देखी। यह सुर्ख सतलड़ी उसके गले में डाल दी गई और उसे कहा गया 'तू आज रात भर जागेगी। आज काश्मीर की बहार की पहली रात है। आज तेरे गले से काश्मीर के गीत यों खिलेंगे जैसे चांदनी रात में केसर के फूल खिलते हैं—ले, यह सुर्ख सतलड़ी पहिन ले।"

चांद ने यह सब कुछ उसकी हैरान पुतलियों से झांककर देखा। फिर एकाएक किसी पेड़ पर एक बुलबुल चहचहा उठी, दूर नौकाओं में दीपक झिलमिलाने लगे और चोटियों से परे बस्ती में गीतों का मध्यम स्वर उभरा। गीत और बच्चों के क़हक़हे, और पुरुषों की भारी आवाज़ें और बच्चों का मीठा-मीठा चीत्कार। छतों से जीवन का धीरे-धीरे उठता हुआ धूआं और सन्ध्या के खाने की महक। मछली और भात और कड़म के साग का नरम और नमकीन स्वाद और पूरे चांद की रात का पूरा यौवन। मेरा क्रोध घुल गया। मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और उससे कहा "आओ चलें झील पर।"

पुल गुज़र गया। पगडंडी गुज़र गई। बादाम के वृक्षों की पंक्ति समाप्त हो गई। तल्ला गुज़र गया। अब हम झील के किनारे-किनारे चल रहे थे। झाड़ियों में मेंढक टर्रा रहे थे। मेंढक और झींगर और बींडे। उन का ऊट-पटांग शोर भी एक संगीत बन गया था। एक स्वप्नमय वातावरण! सोई हुई झील के बीच में चाँद की नाव खड़ी थी निश्चेष्ट, चुपचाप, प्रेम की प्रतीक्षा में—हज़ारों साल से इसी प्रकार खड़ी थी, मेरे और उसके प्रेम की प्रतीक्षा में! तुम्हारी और तुम्हारे प्रेमी की मुस्कान की प्रतीक्षा में! मानव के मानव को चाहने की

आकांक्षा की प्रतीक्षा में ! यह पूरे चाँद की सुन्दर, निर्मल रात किसी कुमारी के अछूते शरीर की तरह प्रेम के पवित्र स्पर्श की प्रतीक्षा में है।

नाव खूबानी के एक पेड़ से बंधी थी जो बिल्कुल झील के किनारे उगा हुआ था। यहाँ पर ज़मीन बहुत नरम थी और चाँदनी पत्तों की ओट से छन-छन कर आ रही थी और मेंढक हौले-हौले गा रहे थे और झील का पानी बार-बार किनारे को चूमता जाता था और बार-बार उसके चुम्बनों का स्वर हमारे कानों में पड़ रहा था। मैंने अपने दोनों हाथ उसकी कमर में डाल दिये और उसे ज़ोर से अपनी छाती से लगा लिया। झील का पानी बार-बार किनारे को चूम रहा था। पहले मैंने उसकी आँखें चूमी और झील के स्तर पर लाखों कमल खिल उठे। फिर मैंने उस के गाल चूमे और निर्मल वायु के कोमल झोंके एकाएक ऊँचे होकर सैंकड़ों गीत गाने लगे। फिर मैंने उसके ओंठ चूमे और लाखों मन्दिरों, मसजिदों और गिरजाओं में प्रार्थनाओं का शोर उठा और धरती के फूल और आकाश के तारे और वायु में उड़ने वाले बादल सब मिल कर नाचने लगे। फिर मैंने उसकी ठोड़ी को चूमा और फिर उसकी गरदन को और कमल खिलते-खिलते सिमटते गये, कलियों की तरह। और गीत उभर-उभर कर मौन होते गये और नृत्य धीमा पड़ता-पड़ता थम गया। अब वही मेंढकों की आवाज़ थी, वही झील के नरम-नरम चुम्बन; और कोई छाती से लगा सिसकियां भर रहा था।

मैंने धीरे से नाव खोली। वह नाव में बैठ गई। मैंने चप्पू अपने हाथ में ले लिया और नाव को खेकर झील के मध्य में ले गया। यहां नाव आप ही आप खड़ी हो गई। न इधर बहती थी, न उधर। मैंने चप्पू उठा कर नाव में रख लिया। उसने पोटली खोली। उसमें से जरदालू निकाल कर मुझे दिये और स्वयं भी खाने लगी।

जरदालू सूखे थे और खट्टे-मीठे।

वह बोली "ये पिछली बहार के हैं।"

मैं जरदालू खाता रहा और उसकी ओर देखता रहा।

वह धीरे से बोली "पिछली बहार में तुम न थे।"

पिछली बहार में मैं न था और जरदालू के पेड़ फूलों से लद गये थे और ज़रा सी टहनी हिलाने पर टूट कर मोतियों की तरह बिखर जाते थे। पिछली बहार में मैं न था और जरदालू के पेड़ फलों से लदे-फंदे थे। हरे-हरे जरदालू! बेहद खट्टे जरदालू—जो नमक-मिर्च लगा कर खाये जाते थे और ज़बान सी-सी करती थी और नाक बहने लगती थी; और फिर भी खट्टे जरदालू खाये जाते थे। पिछली बहार में मैं न था और ये हरे-हरे जरदालू पक कर पीले, सुनहले और लाल होते गये। और डाल-डाल में प्रसन्नता के लाल फूल झूम रहे थे और प्रसन्नतापूर्ण आंखें, चमकती हुई सरल आंखें उन्हें झूमता हुआ देखकर नृत्य सी करने लगती थीं। पिछली बहार में—मैं न था और सुन्दर हाथों ने लाल-लाल जरदालू एकत्रित कर लिए। सुन्दर होंठों ने उनका ताजा रस चूसा और उन्हें अपने घर की छत पर ले जाकर सूखने के लिए डाल दिया कि जब ये जरदालू सूख जायेंगे, जब एक बहार गुज़र जायेगी और दूसरी बहार आने को होगी तो मैं आऊँगा और इनके स्वाद से प्रसन्न हो सकूंगा।

जरदालू खाकर हमने सूखी हुई खूबानियां खाईं। खूबानी पहले तो कुछ इतनी मीठी मालूम न होती लेकिन जब मुंह के लुआब में घुल जाती तो शहद और शकर का स्वाद देने लगती।

"नरम-नरम, बहुत मीठी हैं ये" मैंने कहा।

उसने दाँतों से एक गुठली को तोड़ा और खूबानी का बीज निकाल कर मुझे दिया "खाओ।"

बीज बादाम की तरह मीठा था।

"ऐसी खूबानियां मैंने कभी नहीं खाईं।" उसने कहा "यह हमारे

आंगन का पेड़ है। हमारे हां खूबानी का एक ही पेड़ है मगर इतनी बड़ी, इतनी मीठी खूबानियां होती हैं इसकी कि मैं क्या कहूं! जब खूबानियां पक जाती हैं तो मेरी सब सहेलियां इकट्ठी हो जाती हैं और खूबानियां खिलाने को कहती हैं। पिछली बहार में......"

और मैंने सोचा, पिछली बहार में मैं न था मगर खूबानी का पेड़ आंगन में इसी तरह खड़ा था। पिछली बहार में वह कोमल-कोमल पत्तों से भर गया था, फिर उन में कच्ची खूबानियों के सब्ज़ और नोकीले फल लगे थे। अभी उनमें कच्ची खूबानियां पैदा हुई थीं और ये कच्चे खट्टे फल दोपहर के खाने के साथ चटनी का काम देते थे। पिछली बहार में मैं न था और इन खूबानियों में गुठलियां पैदा होगई थीं और खूबानियों का रंग हल्का सुनहला होने लगा था और गुठलियों के भीतर नरम-नरम बीज अपने स्वाद में हरे बादामों को मात करते थे। पिछली बहार में मैं न था और ये लाल-लाल खूबानियां जो अपनी रंगत में काश्मीरी युवतियों की तरह सुन्दर थीं—और वैसी ही रसीली हरे-हरे पत्तों के झूमरों से झांकती नज़र आती थीं। फिर अल्हड़ लड़कियां आंगन में नाचने लगीं और छोटा भाई पेड़ पर चढ़ गया और खूबानियां तोड़-तोड़ कर अपनी बहिन की सहेलियों के लिए फैंकने लगा। कितनी मीठी थीं वे पिछली बहार की रसभरी खूबानियां... जब मैं न था..... खूबानियां खा कर उस ने मक्की का भुट्टा निकाला। ऐसी सोंधी-सोंधी सुगन्धि थी—सुनहला सेंका हुआ भुट्टा और मोतियों जैसी आभा लिये हुए कुरकुरे दाने और इतना मीठा।

वह बोली "यह मिसरी-मक्की के भुट्टे हैं।"

"बेहद मीठे" मैंने भुट्टा खाते हुए कहा।

वह बोली "पिछली फ़सल के रखे थे; घड़ों में अम्मा की नज़रों से छुपा कर।"

मैंने एक जगह से भुट्टा खाया। दानों की कुछ पंक्तियां रहने दीं,

फिर उस ने उसी जगह से खाया और दानों की कुछ पंक्तियां मेरे लिये रहने दीं, जिन्हें मैं खाने लगा। और इसी प्रकार हम दोनों एक ही भुट्टे से खाते रहे और मैंने सोचा, यह मिसरी-मक्के के भुट्टे कितने मीठे हैं। यह पिछली फ़सल के भुट्टे, जब तू थी, लेकिन मैं न था। जब तेरे पिता ने हल चलाया था, खेतों में गोडी की थी, बीज बोये थे, बादलों ने पानी दिया था। धरती ने हरे रंग के छोटे-छोटे पौधे उगाये थे, जिन में तू ने नलाई की थी। फिर पौधे बड़े हो गये थे और उन के सिरों पर सुरियां निकल आई थीं और हवा में झूमने लगी थीं और तू मक्की के पौधों पर हरे-हरे भुट्टे देखने जाती थी—जब मैं न था, परन्तु भुट्टों के अन्दर दाने पैदा हो रहे थे। दूध भरे दाने, जिन की कोमल त्वचा के ऊपर यदि ज़रा सा भी नाखून लग जाये तो दूध बाहर निकल आता है, ऐसे नरम और नाज़ुक भुट्टे इस धरती ने उगाये थे और मैं न था; और फिर ये भुट्टे जवान और तगड़े हो गये। उनका रस पक गया। अब नाखून लगाने से कुछ न होता था, अपने ही नाखून के टूटने का भय था। भुट्टों की मूंछें, जो पहले पीली थीं, अब सुनहली और फिर अन्त में काली होती गईं। मक्की के भुट्टों का रंग ज़मीन की तरह भूरा होता गया। मैं जब भी न आया था और फिर खेतों में खलिहान लगे और खलिहानों में बैल चले और भुट्टों से दाने अलग हो गये; और तूने अपनी सहेलियों के साथ प्रेम के गीत गाये और थोड़े से भुट्टे छुपा कर, और सेंक कर, अलग रख दिये, जब मैं न था, धरती थी, उपज थी, प्रेम के गीत थे, आग पर सेंके हुए भुट्टे थे, लेकिन मैं न था।

मैंने प्रसन्नता से उसकी ओर देखा और कहा "आज पूरे चाँद की रात में जैसे हर बात पूरी हो गई है। कल तक पूरी न थी लेकिन आज पूरी है।"

उस ने भुट्टा मेरे मुँह से लगा दिया। उस के ओठों का गरम-

गरम सजल स्पर्श अभी तक उस भुट्टे पर था। मैं ने कहा "मैं तुम्हें चूम लूं?"

वह बोली "हुश! नाव डूब जायेगी।"

"तो फिर क्या करें?" मैं ने पूछा।

वह बोली "डूब जाने दो।"

× × ×

वह पूरे चाँद की रात मुझे अब तक नहीं भूलती। मेरी आयु अब सत्तर वर्ष के लग-भग है, परन्तु वह पूरे चाँद की रात मेरे मस्तिष्क में उसी तरह चमक रही है जैसे वह अभी कल आई थी। ऐसा पवित्र प्रेम मैं ने आज तक न किया होगा। उस ने भी न किया होगा। वह जादू ही कुछ और था जिस ने पूरे चांद की रात को हम दोनों को एक दूसरे से यों मिला दिया कि वह फिर घर न गई। उसी रात मेरे साथ भाग आई। और हम पाँच-छः दिन प्रेम में खोये हुये, बच्चों की तरह इधर-उधर जंगलों में, नदी-नालों के किनारे, अखरोटों की छाया तले घूमते रहे। फिर मैं ने उसी झील के किनारे एक छोटा सा घर खरीद लिया और उस में हम दोनों रहने लगे। कोई एक मास के बाद मैं श्रीनगर गया और उस से यह कह कर गया कि तीसरे दिन लौट आऊँगा। तीसरे दिन मैं लौट आया लेकिन क्या देखता हूं कि वह एक नौजवान से घुल-मिल कर बातें कर रही है। वे दोनों एक ही रकाबी में खाना खा रहे हैं। एक दूसरे के मुँह में कौर डालते जाते हैं और हँसते जाते हैं। मैं ने उन्हें देख लिया, लेकिन उन्होंने मुझे नहीं देखा। वे अपने आप में इतने खोये हुए थे कि वे किसी भी दूसरी ओर न देख रहे थे; और मैं ने सोचा कि यह पिछली बहार या उस से भी

पिछली बहार का प्रेमी है, जब मैं न था; और शायद आगे और भी कितनी भी ऐसी बहारें आयेंगी। कितनी ही पूरे चाँद की रातें, जब मुहब्बत एक बदकार स्त्री की तरह बेकाबू हो जायेगी, और नग्न होकर नृत्य करने लगेगी। आज तेरे घर मे ख़िज़ां आ गई है, जैसे हर बहार के बाद आती है। अब तेरा यहां क्या काम ? यह सोच मैं उन से मिले बिना ही वापिस चला गया और फिर अपनी पहली बहार से कभी नहीं मिला।

और अब मैं अड़तालीस वर्ष के बाद लौट कर आया हूं। मेरे बेटे मेरे साथ हैं। मेरी पत्नी मर चुकी है, परन्तु मेरे बेटों की पत्नियाँ और उनके बच्चे मेरे साथ हैं; और हम लोग सैर करते-करते समल झील के किनारे आ निकले हैं; और अप्रैल का महीना है, और तीसरे पहर से संध्या हो गई है और मैं देर तक पुल के किनारे खड़ा बादाम के पेड़ों की पंक्तियाँ देखता जाता हूं, और शीतल वायु में सफेद फूलों के गुच्छे लहराते जाते हैं, और पगडंडी की धूल पर से किसी के जाने-पहचाने क़दमों का स्वर सुनाई नहीं दे रहा। एक सुन्दरी हाथों में एक छोटी सी पोटली दबाये पुल पर से भागती हुई गुज़र जाती है और मेरा दिल धक से रह जाता है। दूर, पार चोटियों से परे बस्ती में कोई पत्नी अपने पति को आवाज़ दे रही है। वह उसे खाने पर बुला रही है। कहीं से एक दरवाज़ा बन्द होने का स्वर सुनाई देता है, और एक रोता हुआ बच्चा सहसा चुप हो जाता है। छतों से धुआं निकल रहा है और पक्षी शोर मचाते हुए वृक्षों की घनी शाखाओं में अपने पंख फड़फड़ाते हैं और फिर एक दम चुप हो जाते हैं। कोई नाविक गा रहा है और उसका स्वर गूंजते-गूंजते क्षितिज के उस पार लीन होता जा रहा है।

मैं पुल को पार करके आगे बढ़ता हूं। मेरे बेटे और उनकी पत्नियां और बच्चे मेरे पीछे आ रहे हैं, अलग-अलग टोलियों में बटे हुए। यहां

पर बादाम के पेड़ों की पंक्ति समाप्त हो गई, तल्ला भी निकल गया, झील का किनारा है। यह खूबानी का पेड़ है लेकिन कितना बड़ा हो गया है। परन्तु यह नाव...यह नाव है, परन्तु क्या यह वही नाव है? सामने वह घर है। मेरी पहली बहार का घर! मेरी पूरे चाँद की रात का प्रेम!

घर में प्रकाश है। बच्चों का शोर है। कोई भारी आवाज़ में गाने लगता है। कोई बुढ़िया उसे चीख़ कर चुप करा देती है। मैं सोचता हूं, आधी शताब्दी हो गई। मैंने उस घर को नहीं देखा। देख लेने में क्या बुराई है? आख़िर मैंने उसे ख़रीदा था। देखा जाये तो मैं अभी तक उसका मालिक हूँ, देख लेने में बुराई ही क्या है। मैं घर के भीतर चला जाता हूं।

बड़े सुन्दर प्यारे-प्यारे बच्चे हैं। एक युवा स्त्री अपने पति के लिए रकाबी में खाना रख रही है। मुझे देख कर ठिठक जाती है। दो बच्चे लड़ रहे थे। मुझे देख कर आश्चर्य से चुप हो जाते हैं। बुढ़िया, जो अभी क्रोध से डाँट रही थी, थंभ के पास आ खड़ी होती है। कहती है "तुम कौन हो?"

मैंने कहा "यह घर मेरा है।"

वह बोली "तुम्हारे बाप का है।"

मैंने कहा "मेरे बाप का नहीं है, मेरा है। कोई अड़तालीस साल हुए, मैंने इसे ख़रीदा था। इस वक्त तो बस यों ही मैं इसे देखने चला आया, आप लोगों को निकालने के लिए नहीं आया हूं। यह घर तो अब आप ही का है, मैं तो यों ही...... ।" मैं यह कह कर लौटने लगा। बुढ़िया की उँगलियाँ सख्ती से थंभ पर जम गईं। उसने ज़ोर से श्वास भीतर खेंचा। बोली—"तो तुम हो......अब इतने साल के बाद कोई कैसे पहचाने ....." वह थंभ से लगी देर तक मौन खड़ी रही। मैं नीचे आंगन में चुपचाप खड़ा उसकी ओर ताकता रहा। फिर

वह आप ही आप हँस दी। बोली "आओ, मैं तुम्हें अपने घर के लोगों से मिलाऊँ......देखो, यह मेरा बड़ा बेटा है। यह इससे छोटा है, यह बड़े बेटे की स्त्री है, यह मेरा बड़ा पोता है, सलाम करो बेटा। यह पोती......यह......यह मेरा खाविन्द है। हश! इसे जगाना नहीं, परसों से इसे बुखार आ रहा है, सोने दो इसे......"

वह फिर बोली "तुम्हारी क्या सेवा करूँ ?"

मैंने दीवार पर खूंटी से टंगे हुए मक्की के भुट्टों की ओर देखा, सेंके हुए भुट्टे, सुनहले मोतियों के से चमकीले दाने।

हम दोनों मुस्करा दिये।

वह बोली "मेरे तो बहुत से दांत झड़ चुके हैं, जो हैं वे भी काम नहीं करते।"

मैंने कहा "यही हाल मेरा भी है, भुट्टा न खा सकूंगा।"

मुझे घर के भीतर घुसते देखकर मेरे घर के लोग भी भीतर चले आये थे। अब खूब चहल-पहल थी। बच्चे शीघ्र ही एक दूसरे से मिल-जुल गये।

हम दोनों धीरे-धीरे बाहर चले आये। धीरे-धीरे झील के किनारे चलते गये।

वह बोली "मैंने छः साल तक तुम्हारी बाट देखी, तुम उस दिन क्यों नहीं आये ?"

मैंने कहा "मैं आया था, लेकिन तुम्हें किसी दूसरे नवयुवक के साथ देख कर वापस चला गया था।"

"क्या कहते हो ?" वह बोली।

"हां, तुम उसके साथ खाना खा रही थीं; एक ही रकाबी में, और वह तुम्हारे मुँह में, और तुम उसके मुँह में कौर डाल रही थीं।"

वह एक दम चुप हो गई, फिर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी।

"क्या हुआ ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

वह बोली "अरे, वह तो मेरा सगा भाई था।"

वह फिर ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगी। "वह मुझसे उसी दिन मिलने के लिए आया था। उसी दिन तुम भी आने वाले थे। वह वापस जा रहा था। मैंने उसे रोक लिया कि तुमसे मिल कर जाये—लेकिन तुम न आये।"

वह एकदम गंभीर हो गई। "छः साल तक मैंने तुम्हारा इन्तज़ार किया। तुम्हारे जाने के बाद खुदा ने मुझे बेटा दिया, तुम्हारा बेटा, लेकिन एक साल बाद वह भी मर गया। चार साल और मैंने तुम्हारी राह देखी, मगर तुम नहीं आये, फिर मैंने शादी कर ली।"

दो बच्चे बाहर निकल आये। खेलते-खेलते एक बच्चा दूसरी बच्ची को मक्की का भुट्टा खिला रहा था।

उसने कहा "वह मेरा पोता है।"

मैंने कहा "वह मेरी पोती है।"

वह दोनों भागते-भागते, झील के किनारे-किनारे, दूर तक चले गये। हम देर तक उन्हें देखते रहे। वह मेरे निकट आ गई। बोली, "आज तुम आये हो, तो मुझे अच्छा लग रहा है। मैंने अब अपना जीवन बना लिया है। इसकी सारी खुशियां और ग़म देखे हैं। मेरा हरा-भरा घर है, और आज तुम भी आये हो। मुझे ज़रा भी बुरा नहीं लग रहा है।"

मैं ने कहा "यही हाल मेरा है। सोचता था, जीवन भर तुम्हें नहीं मिलूंगा। इसी लिये इतने साल इधर कभी नहीं आया। अब आया हूँ तो रत्ती भर भी बुरा नहीं लग रहा।"

हम दोनों चुप हो गये। बच्चे खेलते-खेलते हमारे पास वापस आ गये। उसने मेरी पोती को उठा लिया, मैंने उसके पोते को। उसने मेरी पोती को चूमा, मैंने उसके पोते को; और हम दोनों प्रसन्नता से एक दूसरे की ओर देखने लगे। उसकी पुतलियों में चांद चमक रहा

था और वह चांद आश्चर्य से और प्रसन्नता से कह रहा था—"मनुष्य मर जाते हैं, परन्तु जीवन नहीं मरता। बहार समाप्त हो जाती है, परन्तु फिर दूसरी बहार आ जाती है। छोटे-छोटे प्रेम भी समाप्त हो जाते हैं, परन्तु जीवन का महान्, सच्चा प्रेम सदैव स्थिर रहता हैं। तुम दोनों पिछली बहार में न थे, यह बहार तुमने देखी, इससे अगली बहार में तुम न होगे, परन्तु जीवन होगा और प्रेम भी; और जवानी भी होगी और सौन्दर्य और माधुर्य और सरलता.........

बच्चे हमारी गोद से उतर पड़े, क्योंकि वे अलग खेलना चाहते थे। वे भागते हुए खूबानी के पेड़ के निकट चले गए जहां नाव बँधी हुई थी।

मैंने पूछा "यह वही पेड़ है ?"

उसने मुस्करा कर कहा "नहीं, यह दूसरा पेड़ है।"

: २ :

अजन्ता से आगे

प्रातः कोई छः बजे का समय होगा। लारी का भोंपू बड़े ज़ोर-शोर से चिल्लाया। दो-तीन मिनट तक चिल्लाता रहा, फिर चौकीदार मुझे बुलाने के लिए आया। मैं बड़ी मुश्किल से तय्यार होकर औरंगाबाद के उस जीर्ण मीनारे के पास पहुँचा, जहां लारी खड़ी थी, और मुसाफिर मुझे गालियां दे रहे थे। औरंगाबाद के उस जीर्ण मीनारे पर किसी युग में मशालें जलाई जाती थीं ताकि सड़क पर उजाला रहे। इस समय यह मीनारा लारियों के अड्डे का काम देता है। लारी बिल्कुल मीनारे के साथ लगकर खड़ी थी, गहरी छाया में—उस वेश्या की तरह, जो संतरी की नज़रों से बचकर किसी अंधेरे कोने में खरीदार की इन्तज़ार में खड़ी हो। मैं पहुँचा तो लारी तुरंत चल दी। धुंध में लिपटा हुआ मीनारा बहुत दूर पीछे रह गया। सर्दी बहुत अधिक थी, या मुझे ही लग रही थी। मैंने अपना चार-मीनार का सिग्रेट ओठों में दबाया और लारी के अन्दर इधर-उधर देखने लगा।

सब लोग मुझे घूर-घूर कर देख रहे थे, क्योंकि मैं ही सब से अंत में आया था। कमाल तो यह है कि तहसीलदार साहब भी, जो ड्राइवर के साथ सब से आगे बैठे हुए थे, समय पर आ गये थे और पुलिस इन्स्पैक्टर भी। लेकिन मेरे जैसा साधारण व्यक्ति, जो कोई अफ़सर था न कोई रईस, न जागीरदार, और जिसने प्रातः उठकर नाश्ता भी न किया था, और जिसके पास खाने-पीने का कोई सामान भी न था,

इतनी देर में पहुँचा था। यह तो अच्छा हुआ कि मैं डाक बंगले में ठहरा हुआ था, और हैदराबाद से एक सिफ़ारशी चिट्ठी भी ले आया था, अन्यथा लारी इतनी देर तक मेरे लिए कहां रुकती !

तब लोगों ने मुझे घूरकर देखा। मेरे उलझे हुए काले बालों को, मेरे फूले हुए गालों को, मेरी मोटी नाक को, मेरे सूखे ओठों को, और बड़ी-बड़ी भवों के भीतर गढ़ों में चमकती हुई मैली आंखों को; और फिर प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ग़लती का अनुमान हुआ कि लारी एक ऐसे निर्धन, बेकार और देखने में चार सौ बीस प्रकार के व्यक्ति के लिए क्यों रोकी गई। तहसीलदार साहेब बुड़बुड़ाये। पुसिल-इन्सपैक्टर ने ओठों ही ओठों में मां-बहिन की सुनाई; और जब मैंने साथ बैठे हुए लोगों से माचिस मांगी तो हरेक ने इन्कार कर दिया। मैं देर तक चार-मीनार का सिग्रेट मुँह में लिए उससे खेलता रहा और सड़क के आर-पार फैले हुए, गुज़रते हुए, घूमते हुए मैदानों, घाटियों, और बंजर-भूमि को देखता रहा कि जिनकी छाती लारी के दिल की तरह थी।

मेरे साथ दो खुशपोश लड़के बैठे थे। यही कोई तेईस-चौबीस के जवान होंगे। चेहरे से कालेज का खिलंडरापन प्रकट होता था। नईम और वसीम बड़े सुन्दर लड़के थे। सुन्दर वस्त्र पहने हुए थे। दोनों के पास कैमरे थे, और सुनहली चायदानी, और दूरबीन, और पैकट में सूखा नाश्ता। नईम ने पाइप सुलगाया और माचिस को फिर अपनी जेब में रख लिया। मैंने अपने चार-मीनार को अपने सूखे ओठों में घुमाते हुए उससे कहा :

"हरामज़ादे ज़रा माचिस तो दे दो।"

वह बहुत भिन्नाया। लग-भग अपनी सीट से उछल पड़ा। बोला "क्या बक रहे हैं आप ? आप कौन हैं ?"

मैंने कहा "मैं तुम्हारा बाप हूँ। ज़रा माचिस तो दो, फिर सब हाल बताता हूँ।"

उस ने कुछ आश्चर्य से, कुछ बेदिली से, कुछ क्रोध से, कुछ दिलचस्पी से मुझे माचिस दे दी। मैं ने सिग्रेट सुलगाया और माचिस बाहर फेंक दी, और फिर मुँह मोड़कर कश लेने लगा, और लारी से बाहर देखने लगा। एक मज़बूत हाथ मेरी गर्दन पर पड़ा।

"सूअर!" यह नईम था।

मैं ने कहा "मेरे पास माचिस नहीं थी, तुम्हारे पास थी। मैं ने मांगी, तुम ने नहीं दी। मैं ने यह चाल चली। चाल सफल हो गई। तुम ने सोचा, शायद मैं तुम्हारा लंगोटिया निकलूंगा, लेकिन मैंने आज से पहले तुम कभी नहीं देखा। इस सफ़र के बाद देखने की आशा भी नहीं रखता। अब तुम मुझे लारी से नीचे फैंक सकते हो।"

वसीम मुस्कराने लगा। नईम से बोला "कोई सड़ी-सौदाई मालूम होता है। जाने दो गरीब को। फिर मुझे सम्बोधन करके बोला "अब के तुम ने कोई ऐसी हरकत की तो मैं तुम्हें पुलिस इन्सपैक्टर के हवाले कर दूंगा।"

पुलिस-इन्सपैक्टर साहेब ने मुझे मां की गाली दी, और कहा कि वह मुझे जान से मार डालेंगे। मैंने कहा कि वह कदापि ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि मैं हैदराबाद से नवाब फलां जंग बहादुर, जो न बहादुर हैं और न कभी जिन्होंने किसी जंग में भाग लिया है, की सिफ़ारशी चिट्ठी लाया हूँ, और अजन्ता देखने जा रहा हूं, और कोई माई का लाल मुझे नहीं रोक सकता।

नवाब का नाम सुन कर पुलिस इन्सपैक्टर के कान खड़े हो गये, और तहसीलदार साहब के ओंठ लटक गये। नईम और वसीम ने एक साथ पूछा "आप नवाब फला जंग बहादुर को जानते हैं?"

"जानता हूँ" मैंने चिढ़ कर कहा। "मैं उनके साथ शराब पी चुका हूँ। उनके साथ रंडियों से प्रेम-क्रीड़ा कर चुका हूं, और उनके साथ नंगा नाच चुका हूँ। उनकी बीवी का प्राइवेट सेक्रेटरी रह चुका

हूं। मैं नहीं जानता तो क्या तुम जानते हो उसे, कालेज के कल के लौंडे ?"

"तमीज़ से बात करो जी !" यह सामने की सीट पर बैठी हुई एक सुन्दर लड़की थी। उसका नाम नज़हत था। लोग प्यार से, विशेषकर वसीम उसे 'नाज़' कहता था। बहुत प्यार आता तो नाज़ो कह देता, और यह महिला भी किसी नातजुर्बाकार मुर्गी की तरह पंख फड़फड़ाती और कुड़कुड़ाती और प्रसन्न होकर वसीम की ओर ऐसे देखने लगती जैसे वह अभी किसी दलेर मुरग की तरह ठूंग मारने पर उतारू हो और आप वार सहने पर तय्यार हो। मैंने बड़ी घृणा से उसकी ओर देखा और कहा "देवी ! आपका प्रेम अभी कच्चा है। हो सकता है रास्ते ही में टूट जाये, आप अभी से वसीम का पक्ष न लें।"

इस पर नज़हत की बहिन नकहत, जो उसके साथ ही बैठी थी, और उतनी ही सुन्दर और नाज़ुक थी, क्रोध से लाल-भभूका होकर बोली "इस बदतमीज़ आदमी को लारी से नीचे उतार दो, नहीं तो हम लोग उतरे जाते हैं।"

नईम ने मुझे गर्दन से पकड़ लिया और कहा—"बच्चा जी !"

नज़हत और नकहत की बड़ी बहिन रिफ़त, और उसका होने वाला पति जमील, और रिफ़त का भाई—सब लोग मेरे गिर्द हो गये। एक मुसीबत सी खड़ी हो गई। लारी रुक गई। वे सब लोग मुझे लारी से नीचे धकेलने लगे।

मैंने जेब से फलां-जंग बहादुर का दिया हुआ राहदारी का परवाना निकाला और कहा "है कोई माई का लाल जो इस परवाने के होते हुए मुझे हाथ लगा सके। मैं एक-एक को चुन-चुन कर जेल भिजवा दूंगा। यह पढ़ो खत। मैं हर जगह जा सकता हूं।"

"देखा जायेगा"—नईम और वसीम और जमील ने कहा।

सुन्दर लड़कियां मौन हो गईं। स्त्रियाँ स्थिति को शीघ्र ही पहचान लेती हैं।

तहसीलदार साहेब ने कहा "आप इन लड़कियों से माफ़ी मांगिये और आगे सफ़र में चुप रहने का वायदा कीजिये। मैं मानवता के सम्बन्ध से आपसे प्रार्थना करता हूं।"

मैंने कहा "और मैंने भी एक मानव के रूप में, एक भेड़िये के तौर पर नहीं, आपसे माचिस मांगी थी। और आप में से किसी ने नहीं दी। खैर, मैं आपकी प्रार्थना स्वीकार करता हूं, क्योंकि फलां यार जंगबहादुर मेरे मित्र हैं और हर जगह मुझे उनका आदर करना है इसलिए...।"

इस लिए मैंने नज़हत से, रिफ़त से, नकहत से, क्षमा मांगी। वसीम से भी, जो नज़हत को चाहता था, लेकिन लारी में कुछ न कर सकता था; और जमील से भी जो नकहत का भावी-पति था और बार-बार उस की सुन्दर उंगलियों को छू लेता था। उल्लू समझता था कि कोई उसे देख नहीं रहा है, और रिफ़त, जो अपने सौन्दर्य पर स्वयं ही मरी जा रही थी, यद्यपि उस का चाहने वाला नईम भी वहीं उसी लारी में बैठा था—मैंने सब लोगों से क्षमा मांगी। पुलिस इन्स्पैक्टर और तहसीलदार से भी, और सेठ दाहर जी बजूरिया और उनके गुमाशते और उनके साथ लम्बे-लम्बे बालों वाले कलाकार लौंडे से भी। क्लीनर से भी, और ड्राइवर से भी। अन्त में मैंने नवाब फलां जंग बहादुर का वह पत्र भी फाड़ दिया और सब लोग मुझ से सन्तुष्ट हो कर लारी में बैठ गये। और लारी आगे चली।

मैंने सेठ दाहर जी बजूरिया से पूछा "आप भी अजंता देखने जा रहे हैं?"

"जी!"

"वह क्यों, वहाँ तो कोई बिज़नस नहीं है।"

वह हंसा, बोला "हम उधर से साड़ियों के अच्छे-अच्छे डिज़ाइन

लाते हैं" उस ने कलाकार लौंडे की ओर संकेत करते हुए कहा "यह हमारा आदमी इन डिज़ाइनों की नक़ल उतारता है और फिर हमारे मिल में साड़ी पर यह डिजाइन छपता है और लाखों का साड़ी बिकता है। हमारे मिल के साड़ी का डिज़ाइन बहुत प्रसिद्ध है।"

मैं आर्टिस्ट लौंडे की ओर देखकर मुस्कराया। उस ने मुझे हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। फिर मैंने उसे हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। तो उत्तर में उसने फिर मुझे हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। उसके बाद मैंने फिर उसे हाथ जोड़ कर नमस्कार करना चाहा कि लारी एक गढ़े से गुज़र गई और जैसे एक भौंचाल से गुज़र गई। नज़हत अपनी सीट से उछल कर मेरी गोद में आ गिरी। मैंने वसीम से कहा "संभालो अपनी मुरगी को"। इस पर जमील ने मुझे याद दिलाया कि मैंने चुप रहने का वायदा किया था; और नकहत ने कहा कि अब चूँकि मेरे पास वह फलां जंग बहादुर का पत्र भी नहीं रहा इसलिये ज़बान पर पहरा रखना होगा। अतएव मुरगी चुप-चाप अपनी सीट पर बैठ गई और अपने पर-पुर्ज़े ठीक करने लगी। और मैंने यह समझ कर कि इस लारी के जंगली और असभ्य लोग मेरी सुन्दर सभ्यता के पात्र नहीं हो सकते, चार-मीनार का सिगरेट सुलगाया और लारी से बाहर के संसार में चला गया।

सड़क से कुछ दूर जाम का झाड़ खड़ा था। उसकी छाया में पचास-साठ किसान एकत्रित थे। अर्ध-नग्न काले-भुजंग किसान एक दायरा सा बनाये खड़े थे। उनके हाथों में लाठियाँ थीं। दिल में संकल्प था और आँखों में एक कठोर-पथरीली सी चमक थी, जैसे वार करते समय कौबरे की आँखें चमकती हैं—बस उन किसानों की आँखों में उस समय उसी प्रकार की चमक थी। उन किसानों के बीच में नारायन राव रेडी खड़ा था।

रेडी ने पूछा "तो तुम लोग भूमि-कर नहीं दोगे?"

क़िसान बोले "नहीं।"

"जागीरदार का भाग भी नहीं दोगे?"

एक किसान बोला "राजा साहेब अगर मर भी जायें तो उनके श्मशान-भूमि तक ले जाने का ख़र्च भी नहीं दे सकते हम लोग?"

किसान नौजवान था और हाथ-पांव का तगड़ा, और उसकी मुट्ठियाँ ज़ोर से भिंची हुई थीं।

रेडी ने उसकी ओर बड़े ध्यान से देखा और फिर रिवालवर से फ़ायर कर दिया।

किसान गिर पड़ा और उसके ऊपर उसकी माँ गिर गई, और दोनों हाथ ऊपर उठाकर बोली "पिछले साल राजा मेरी बेटी ले गये थे। मेरी कँवारी बेटी, जो तुम में से किसी का नन्हा सा घर बसाती। वह बेटी मुझे आज तक नहीं मिली। सुना है वह राजा के महल में नौकरानी है और एक हरामी लड़की की माँ। मेरी कँवारी, बिन-ब्याही लड़की! आज मेरा बेटा भी मालिक ने मुझ से छीन लिया। पंचायत वालो, मेरा न्याय कहाँ होगा?"

किसानों ने लाठियां संभालीं। रेडी ने रिवालवर से फ़ायर किए। फ़ायर होते गये। किसान आगे बढ़ कर मरते गये। फिर गोलियाँ समाप्त हो गईं और लाठी का एक भरपूर वार रेडी की खोपड़ी पर पड़ा और उसका भेजा बाहर निकल आया। किसानों ने एक विषैले साँप की तरह उसे वहीं कुचल दिया और फिर वे बुढ़िया के बेटे के गिर्द एकत्रित हो गये।

बुढ़िया ने काँपते हुए स्वर में कहा "यह मेरे बेटे का खून है। इसी खून में मेरी बेटी की पत भी घुली हुई है।" उसने अपनी उँगली अपने बेटे के बहते हुए रक्त में डबो कर कहा—"जो आज से राजा का किसान नहीं है, प्रजा का किसान है, मैं उसे यह तिलक लगाऊँगी, जो आज से अपने गाँव, अपने घर, अपनी धरती, अपनी फ़सल की रक्षा करेगा, यह लाल तिलक उसके माथे पर होगा। आगे बढ़ो।"

किसान एक-एक करके आगे बढ़ने लगे। बुढ़िया अपने बेटे के रक्त में उँगली डबो-डबो कर तिलक लगाने लगी।

लारी लाल तिलक वालों की पहुँच से आगे निकल गई, बहुत दूर......

मैंने सेठ दाहर जी बजूरिया से पूछा "अब के कपड़े से जो कन्ट्रोल उठा, उस से तुम्हें क्या लाभ हुआ ?"

वह बोला, "अपने को क्या लाभ हुआ ? अपनी मिल तो मैनेजिंग एजेन्टस के पास है। अपन ने तो बस आठ-दस लाख का हेर-फेर किया। मज़े में तो एजेन्टस रहे।"

"वह कैसे ?" मैंने पूछा।

उस का गुमाश्ता बीच में बोल उठा—"हमें पहले से मालूम था, कन्ट्रोल उठने वाला है। जिस बात को गांधी जी चाहते हैं, उसको कोई रोक थोड़े ही सकता है। मैनेजिंग एजेन्ट्स ने माल रोक दिया। दो-तीन मास रोकते रहे। बाज़ार में कपड़ा नहीं मिलता था। लोग शोर मचाते। गांधी जी ने जब जनता का कष्ट देखा तो उन्होंने कन्ट्रोल उठाने के लिए ज़ोर दिया। जब कन्ट्रोल उठा, कपड़ा एकदम दो सौ गुना महँगा हो गया। उधर पाकिस्तान में कपड़े का अकाल था। कपड़ा तीन सौ गुना महँगा हो गया। अकेली हमारी मिल के मैनेजिंग एजेन्ट्स ने कपड़े के व्योपार में पिछले दो मास में ढाई करोड़ रुपया कमा लिया, इतना हमने पिछले दो युद्धों में भी नहीं कमाया था जितना पिछले दो मासों में कमा लिया। अब भले से सरकार फिर कन्ट्रोल कर दे। अपन को क्या परवाह है।"

गुमाश्ते ने घृणा से एक गन्दा इशारा किया और ५५५ का सिगरेट पीने लगा।

मैंने आर्टिस्ट-नुमा जानवर से पूछा "और तुम्हें क्या मिला इस धन्धे से ?"

वह बोला "मैं कलाकार था। चित्र बनाता था वे कला के उत्तम नमूने कि जिन्हें आलोचक सराहते थे और दूसरे कलाकार ईर्षा की दृष्टि से देखते थे। सारे संसार में मेरा आदर था। मैं कलाकारों की सभा का सभापति भी रह चुका हूं लेकिन कला ने मुझे पैसा नहीं दिया। रोटी नहीं दी, कपड़ा नहीं दिया। इतना भी तो नहीं दिया कि दोनों समय खाना खा सकूँ, अपनी पत्नी का तन ढकने के लिए धोती तक ख़रीद सकूं, अपने बच्चे को स्कूल भेज सकूं। तुम जानते हो कलाकार भी मनुष्य होता है, उसकी आवश्यकतायें भी दूसरे लोगों की तरह होती हैं।"

"फिर क्या हुआ ?" मैंने पूछा "आगे बको, यह दार्शनिकता मत बघारो, मैं यह सब जानता हूँ।"

वह बोला "फिर मैंने कला का ख्याल छोड़ दिया और सेठ दाहर जी की मिल में नौकर हो गया। अब मैं साड़ियों के नमूने अजंता के फ्रैस्को से नक़ल करता हूं और उनमें थोड़ी सी काट-छांट करके रंग भरता रहता हूं। मेरे नमूने बहुत सफल हैं। मिल-मालिक मुझे हर मास बारह सौ रुपया वेतन देते हैं।"

मैंने कहा "तो तुम अजंता बेचते हो। जैसे यह मिल-मालिक गांधी जी को बेचता है।"

आर्टिस्ट-नुमा जानवर ने एक सुन्दर सा पाइप सुलगाया और अपने कंधे हिलाकर चुप हो गया। लेकिन सेठ को बड़ा क्रोध आया। बोला "तुम हमारी इन्सलट करता है। हम अहमदाबाद का सबसे बड़ा सेठ है।"

मैंने कहा "मैं अहमदाबाद का सबसे निर्धन आदमी हूँ। मुझे ही तुम्हारी इन्सलट करने का अधिकार है।"

सेठ ने कहा "तुम वापस अहमदाबाद चलो, मैं तुम्हें जेल में बन्द करा दूंगा। साला, क्या समझता है, सेठ दाहर जी बजूरिया से सरकार भी......"

मैंने कहा "डरता होगा, मैं वापस अहमदाबाद अवश्य जाऊँगा और तुम मुझे जेल में बन्द करा दोगे। और मैं जेल में नंगा नाचूंगा, और राज्य तुमसे डरता रहेगा, और फिर कपड़े का भाव आठ सौ गुना बढ़ जायेगा और मेरी जेल के बाहर लाखों नंगे इन्सान नाचेंगे । उस दिन तुम और तुम्हारी सरकार, और तुम्हारे मैनेजिंग एजन्टस—सब लोग मुझ से डरेंगे, क्योंकि मैं अहमदाबाद का सबसे निर्धन आदमी हूं।"

रिफ़त ने एक झल्लाहट से कहा "किस सड़ी-सौदाई से वास्ता पड़ा है। सफ़र का मज़ा किरकिरा कर दिया । स्यासत, स्यासत, स्यासत। जहां देखो, यही बकवास, मेरे तो सुनते-सुनते कान पक गये।"

जमील ने नकहत से कहा—"आओ बैत-बाज़ी से जी बहलायें।"

लड़कियां उछल पड़ीं "वाह ! वाह !"

बैत-बाज़ी में सौन्दर्य और कविता, प्रेम प्यार की कथायें जो होती हैं ! क्यों न प्रसन्न होतीं। जैसे मुरगियों को मुरग मिल गये, वहीं सीट पर बैठे-बैठे अपने पंख फुलाने लगीं।

मैंने कहा "आप लोग बैत-बाज़ी शुरू कीजिये, मगर . ।"

रिफ़त ने बात काटते हुए कहा "तुम्हें कौन शामिल करता है, तुम चुप नहीं रह सकते ?"

मैंने कहा "मैं कहां शामिल हो रहा हूं आप जैसे लोगों की महफ़िल में। मेरा कहने का मतलब यह है कि बैत-बाज़ी में कोई नई बात होनी चाहिये। जैसे......"

"तौबा, अल्लाह ! आखिर आपका मतलब क्या है?" नज़हत चिढ़ कर बोली।

"मैं यह कहने जा रहा था कि आप लोग बैत-बाज़ी बड़े शौक से करें, मैं सुनता रहूंगा, लेकिन अगर पूरी बैत-बाज़ी गालिब के शेरों तक ही सीमित रहे तो अच्छा है, क्या ख्याल है आपका ?"

वसीम ने मुस्करा कर कहा "ख्याल तो बहुत अच्छा है। मगर है मुश्किल बात।"

"अजी कुछ मुश्किल नहीं, तुम चलो।"

नज़हत ने कहा "मैं शुरू करती हूं। हम तीनों बहिनें एक तरफ़, तुम तीनों मर्द एक तरफ़।"

लखनऊ आने का बायस नहीं खुलता यानी,
हविसे सैरो तमाशा, सो वह कम है हमको।[१]

जमील ने उत्तर दिया:—

वां पहुँच कर जो ग़श आता पैहय हमको,
सदरह आहंग ज़मीं बोस क़दम है हमको।[२]

नकहत बोली:—

वां उसको हौले दिल है तो यां मैं हूं शर्मसार,
यानी यह मेरी आह की तासीर से न हो।[३]

---

१. हम लखनऊ क्यों आये, इसका कारण मालूम नहीं होता। यदि यह कहा जाये कि सैर-तमाशा की लालसा थी तो यह लालसा हमें नहीं है।

२. प्रेमिका की गली में पहुंच कर हमारे बार-बार मूर्छित हो जाने का कारण यह है कि इतने बुढ़ापे और निर्बलता के बावजूद हमारे कदम हमें यहां तक ले आये। इस उपकार के कारण हम बार-बार अपने कदमों को चूमने का संकल्प करते हैं और मूर्छित हो जाते हैं।

३. उन्हें दिल के हौल का रोग है और मैं लज्जित हूँ, कहीं यह मेरी आहों के कारण न हो।

वसीम ने नज़हत की ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहाः—

बफ़ादारी बशर्तें उस्तवारी असले ईमां है,
मरे बुत खाना में तो काबा में गाड़ो ब्रह्मन को।[1]

वे लोग गालिब के शेरों में अपनी-अपनी बातें ब्यान करने लगे और अपनी काम-सम्बन्धी आकांक्षाओं के सन्देश देने लगे; और मैं ऊब कर लारी से बाहर नज़र दौड़ाने लगा। लारी एक टीले के पास से गुज़र गई। यहां एक छोटा सा घर था। टीले पर गुल महर का वृत्त खड़ा था और घर के बाहर खेतों में एक बैल की लाश पड़ी हुई थी। गिद्ध उसे नोच-नोच कर खा गये थे, और अब उसके चौड़े चकले हाड़ों पर आवारा कुत्ते, गिद्ध, कव्वे और गीदड़ जमा थे। इस घर में चेलापति रहता था और उसकी पत्नी सुन्दरमा। सुन्दरमा सचमुच बड़ी सुन्दर थी। उसका यौवन गुल महर के फूलों की तरह लहक रहा था। जब चेलापति ने उसे पहले-पहल देखा, वह अपने खेतों में, अपनी फ़सल के बीच में खड़ी गोफिया चला रही थी और गा रही थी कि चेलापति का उधर से आना हुआ। उसने सुन्दरमा को देखा और उस के गीत का उत्तर अपने गीत से दिया; और इस तरह चेलापति और सुन्दरमा की भेंट हुई; और फिर वे दोनों एक दूसरे को गोफिया चलाने की कला सिखाने लगे; और इस तरह उन दोनों में प्रेम का बीज अङ्कुरित हुआ और यह बीज उनके खेतों में फूटा और उन दोनों ने बड़ी तन्मयता से उसे सींचा, नलाई की, गोड़ी की, उसे पाला, पोसा,

१. स्वामी-भक्ति ही वास्तविक धर्म है। ब्रह्मन यदि सारी आयु मन्दिर में व्यतीत कर दे और वहीं मर जाये तो उसे काबे में गाड़ना चाहिए, यह उसका अधिकार है।

परवान चढ़ाया। फिर उनके प्रेम का खलिहान लगा और दोनों गांव वाले इकट्ठे हुए; और सुन्दरमा और चेलापति को प्रेम के खलिहान में अपना भाग मिला और उन्हें इस टीले के किनारे पर छोटा सा घर मिला। ये छोटे से तीन खेत और एक गुल महर का वृक्ष जो फूलों से लदा उनके जीवन की प्रसन्नता भरी उमंगों का चित्र था।

चेलापति और सुन्दरमा उस नन्हें से घर में रहने लगे। उन्होंने अपने प्रेम और परिश्रम से खेतों में बहारों को एकत्रित किया। जो धरती बंजर थी, वह पसीने से सींची। जहां धूल उड़ती थी वहां हरियाली ने लहकना शुरू किया। जहां मटियाली भूख थी वहां सुनहली फ़सलें सरसराने लगीं। बीज धरती की गोदी से उभर आया और सुन्दरमा सोने जैसी चमकती हुई फ़सलों के बीच में खड़ी होकर अपने मचान पर गोफिया चलाने लगी। उस के केश वायु में लहरा रहे थे, उसकी साड़ी का आँचल फहरा रहा था और वह गीत गा रही थी। मां का गीत अपने बच्चे के लिए। धरती का गीत अपने बीज के लिए। बहार का गीत अपनी फ़सल के लिये। उसे इस हालत में गांव के पटेल ने देखा और उस पर मोहित हो गया। पटेल का भाग शताब्दियों से हर खलिहान में था, हर घर में था, हर शादी-ब्याह में था, हर बच्ची के सतीत्व में था जो उसे पसंद आ जाये। सुन्दरमा उसे पसंद आ गई। क्या हुआ अगर वह किसी दूसरे की ब्याहता थी। वह गांव का पटेल था और प्रेम के खलिहान में उस का भी भाग था, लेकिन सुन्दरमा कैसे मानती? चेलापति यह भाग कैसे देता? पटेल ने सब चालें चलीं। अन्त में जब कोई चाल सफल न हुई तो पटेल ने चेलापति को मरवा देना चाहा, लेकिन चेलापति मरा नहीं। उल्टा उसने पटेल के दो गुण्डों का सिर कुचल कर रख दिया। उस पर पटेल चुप हो गया। उस समय उसे यही उचित जान पड़ा।

दिन बीतते गये। बहार अभी अनुभव-हीन थी, ठहर न सकी। गांव में अकाल पड़ा और पानी खेतों में न बरसा; और चेलापति के

खेतों में फ़सल बहुत कम हुई, इतनी कम कि पटेल का भाग और जागीरदार का भाग—और मालिये का भाग देने के बाद कुछ न बच सकता था। इसलिये चेलापति ने किसी को भी अपने परिश्रम का भाग देने से इन्कार कर दिया। पटेल ने उसे बहुत समझाया; और गांव के दूसरे पंचों ने भी; जो उसी की तरह भूखे थे, और फ़ाके कर रहे थे; लेकिन चेलापति ने एक न मानी। इस पर पटेल के गुरगों ने उसे क़त्ल की धमकी दी।

रात को चेलापति ने सुन्दरमा से परामर्श किया।

सुन्दरमा ने कहा "मान जाओ, मेरी गोद में अगली बहार तक तुम्हारा बच्चा खेलने वाला है, हम फिर लड़ेंगे।"

चेलापति ने कहा "उसी बच्चे के लिये तो यह सब कुछ कर रहा हूं।"

सुन्दरमा ने कहा "तो अब यह सब कुछ कैसे होगा? गांव में हमारा कोई साथी नहीं है। वे लोग सचमुच हमें मार डालेंगे।

चेलापति ने कहा "तुम डरती हो?"

वह बोली "नहीं, मैं तुम्हारे लिये डरती हूँ।"

चेलापति बोला "मैं मख़दूम के पास जाता हूं।"

"मख़दूम कौन है?" सुन्दरमा ने पूछा।

चेलापति की आंखें चमकने लगी और वह कहने लगा "वह सांवला सा दुबला-पतला नौजवान है। वह गांव-गांव घूम कर किसानों को इकट्ठा करता है और उन्हें उन के अधिकार और उन के कर्त्तव्य बताता है। मख़दूम कल साथ वाले गांव में था और किसानों को जत्था-बन्दी के ढङ्ग बता रहा था। मैं आज उस के पास जाता हूँ और उसे अपने गांव लाता हूँ।"

वह चुपके से घर से बाहर निकला। सुन्दरमा के गोल चेहरे को अपनी उँगलियों से छू कर बोला "तू डरती तो नहीं है?"

सुन्दरमा ने आधे चाँद की ओर व्याकुल दृष्टि से देखा, बोली "सँभल कर जाना। न जाने दुश्मन घात में हों।"

दुश्मन सचमुच घात में था। सुबह सवेरे जब चेलापति मख़दूम को लेकर लौटा तो घर का दरवाज़ा खुला था, और उस के घर के बर्तन तोड़ डाले गये थे, और उस के बैल बाहर खेतों में मरे पड़े थे, और मचान के नीचे उस की सुन्दरमा दम तोड़ रही थी।

"सुन्दरमा ! सुन्दरमा !!" चेलापति चिल्लाया।

सुन्दरमा ने घायल नज़रों से अपने पति की ओर देखा उस के हाथ में फसल का एक नन्हा सा पौधा था। बोली, "तुम आ गये, तुम बच गये। मगर मैं नहीं बच सकूंगी, क्योंकि मैं अकेली थी और वे पचास आदमी थे।"

"सुन्दरमा, सुन्दरमा !" चेलापति ने समुद्र की तह में बहने वाली लहरों की तरह धीमे-धीमे कहा।

"मैं अकेली थी और वे पचास आदमी थे, और उन्होंने मेरी धरती का बीज नष्ट कर दिया।"

वह मर गई और फ़सल का नन्हा सा पौधा उस के हाथ से सरक गया और अनाज धरती पर बिखर गया।

चेलापति ने मख़दूम की ओर देखा। मख़दूम ने सुन्दरमा की ओर, फिर उस ने अनाज के दाने अपनी मुट्ठी में उठा लिये और कहा "आओ, चेलापति यहां से चलें, गांव वाले इन दानों का इन्तज़ार कर रहे हैं।"

चेलापति मख़दूम के साथ चला गया। वह फिर अपने घर नहीं लौटा। उस छोटे से नन्हें घर का दरवाज़ा खुला है और उसके सारे बरतन टूटे पड़े हैं और उसके खेत बंजर और वीरान हैं और बैल की लाश को गिद्ध और गीदड़ खा रहे हैं।

चेलापति और सुन्दरमा का संसार उजड़ चुका है। केवल टीले के

पेड़ पर गुल महर के फूल डाल-डाल पर खिले हुए हैं। घर उजड़ गया है। खेत वीरान हो गया है। मचान टूट गया है। सुन्दरमा मर गई है। चेलापति चला गया है। लेकिन यह गुल महर के सुर्ख़-सुर्ख़ फूल अभी तक निराश नहीं हुए। फूल कभी निराश नहीं होते। वे सदैव बहार की प्रतीक्षा करते हैं।

लारी बहुत दूर आगे निकल गई। टीला बहुत दूर पीछे रह गया। वसीम कह रहा था :

> दिल में ज़ौके वसलो यादे यार तक बाक़ी नहीं।
> आग इस घर को लगी ऐसी कि जो था जल गया॥[1]

नकहत बोली :—

> अहबाब चारासाज़ियें वहशत न कर सके।
> ज़ंदां में भी ख्याले ब्याबां नवर्द था॥[2]

नईम बोला :—

> एक एक क़तरे का मुझे देना पड़ा हिसाब।
> खूने जिगर वदीयते मिज़गानें यार था॥[3]

---

१. दिल की बर्बादी इससे अधिक क्या होगी कि मित्र से मिलने की उत्सुकता और उसकी याद तक बाकी नहीं रही।

२. प्रेम के पागलपन का इलाज किसी से न हो सका। कैदख़ाने में भी मेरी कल्पना ब्याबानों की सैर कर रही थी और मेरे पागलपन का प्रमाण उपस्थित करती थी।

३. मुझे दिल के खून का हरेक कतरा बहाना पड़ा। कारण, दिल का खून मित्र की पलकों की एक अमानत था और इस अमानत को अवश्य देना था।

जमील बड़ी शान से बोला :—

आज वां तेग़ो कफ़न बांधे हुए जाता हूँ मैं ।
उज़्र मेरे क़त्ल करने में वह अब लायेंगे क्या ॥[1]

मैंने कहा, जब बात यहां तक बढ़ गई है तो यह कहने में क्या बुराई है कि :—

आईना देख अपना सा मुंह लेके रह गये ।
साहब को दिल न देने पे कितना गरूर था ॥[2]

नज़हत ने झल्ला कर कहा "आपको इस बैत-बाज़ी में किस ने शामिल किया है ? आप चुप रहिये ।"

मैंने कहा "मैं चुप हुआ जाता हूँ क्योंकि सामने एलोरा की गुफ़ायें नज़र आ रही हैं ।"

एलोरा की गुफ़ायें !

एलोरा की गुफ़ायें देखने में मैं सब से घाटे में रहा । पुलिस इन्स्पैक्टर और तहसीलदार साहब के लिए यहां भुने हुए मुर्ग और रोगनी रोटियों और दो सुन्दर लड़कियों का प्रबन्ध किया गया था । नकहत, रिफ़त और नज़हत, जमील, वसीम, और नईम के साथ गुफ़ाओं में घूमने के मज़े लेती रहीं । यहां अन्धकार भी था और एकांत भी और

---

१. आज मैं अपने साथ तलवार भी ले जा रहा हूं और कफ़न भी, अब भला उन्हें मुझे कत्ल करने में क्या संकोच होगा ?

२. उन्हें किसी को दिल न देने पर बहुत घमंड था क्योंकि वह किसी को उसके योग्य न समझते थे लेकिन जब अपनी सूरत शीशे में देखी तो मोहित हो गये (अपने प्रतिबिम्ब को एक और सुन्दरी समझ लिया) ।

आध पौन घंटा के लिए अपने साथियों से अलग भी हुआ जा सकता था और बाद में यह कह कर "अरे भाई हम तो ऐसे भूलभुलइयों में पड़ गये" पीछा भी छुड़ाया जा सकता था। अर्थात् एलोरा की गुफ़ाये बहुत दिलचस्प रहीं लेकिन मैं बहुत घाटे में रहा। डाक बंगले से भूखा चला था, यहां पर भी किसी ने मेरे लिए मुरगे और रोगनी रोटियों का प्रबंध नहीं किया। जो सुन्दर लड़कियां थीं वे दूसरों को मिल चुकी थीं। मेरे भाग में एक गाइड आया और एक उन तीनों सुन्दर बहनों का भाई।

मैंने गाइड से पूछा "क्या मैं तुम्हारी सहायता के बिना ये गुफ़ायें नहीं देख सकता ?"

वह बोला "आप देख सकते हैं, समझ नहीं सकते।"

मैंने रिफ़त, नकहत और नज़हत के भाई से कहा "अब तुम भी इन गुफ़ाओं में अपनी बहनों को न देख सकते हो न समझ सकते हो।"

वह बोला "क्या मतलब है आपका ?"

मैंने कहा "तीन सुन्दर बहनों का भाई होना तुम्हारे लिये क़यामत है। तीनों तुमसे उम्र में बड़ी हैं। आज तक उन्होंने तुम पर हकूमत की है तुम्हें अपने प्रेम के लिये साधन बनाया है। जब तुम बड़े हो जाओगे और इनकी शादी हो जायगी तो तुम भी किसी दफ़तर में क्लर्क बन कर मारे-मारे फिरोगे। पहले अपनी बहनों के नाश्तेदान, पानदान और छतरियां उठाते फिरते थे फिर अपनी बीवी का साज़ोसामान लादे फिरोगे। जीवन भर हीनता-भाव में ग्रस्त रहोगे और इसी रोग में ग्रस्त रह कर मर जाओगे। मुझे तुम पर दया आती है।" तुम्हारा नाम क्या है ?

"नादिर !"

"नादिर भैया ! मेरी बात मानो, कूच का हुकम दे दो। यह साज़ोसामान यहीं छोड़ दो और वापस लौट जाओ। तुम्हारी बहनों

को स्वयं तुम्हारी बहनों के प्रेमी टहला-टहला कर लाते फिरेंगे। तुम व्यर्थ क्यों कष्ट में पड़ते हो ?"

नादिर ने कहा "आप बहुत ज़बान-दराज़ होते जा रहे हैं हालांकि आपने अभी अभी हमसे माफ़ी मांगी थी। लेकिन फिर भी आप वैसे के वैसे ही रहे। अब मैं आपकी माता जी की शान में गुस्ताख़ी कर बैठूंगा।"

गाईड के कहा "देखिये, यह राज-नर्तकी की प्रतिमा है।"

सुडौल बाहें, ज्वार-भाटा बनी छातियां, झुकी-झुकी कमर और फैले फैले कूल्हे, और शरीर के हर अंग में विकलता, स्थायी नृत्य! एलोरा की गुफाओं में कोई देवी ऐसी न थी जो सुन्दर न थी। कोई देवता ऐसा न था जो हृष्ट-पुष्ट न था। हां, सब ही देवता थे, और सब ही देवियां। यहां द्राविड़ सभ्यता के देवता थे, फिर ब्राह्मणों के देवता, फिर बुद्ध-मत के उपासक, फिर जैन धर्म के नाम लेवा। सांचे में ढले हुए शरीर, मरमर से भी अधिक सुन्दर मूर्तियां। राम और रावण के युद्ध। महाभारत के युद्ध-क्षेत्र। बुद्ध का अमर ज्ञान और जैनियों का शाश्वत प्रकाश। भारत की चार हज़ार वर्षों की पुरानी सभ्यता और संस्कृति के समस्त उत्थान और पतन इन पत्थर की मूर्तियों में अङ्कित था। इन पत्थरों मे हम उस सभ्यता की महान्ता देख सकते थे, उसकी तंगदिली, उसकी संकीर्णता, उसकी उदारता, उसके सामूहिक भेद-भाव, उसकी गिरावट। उस संस्कृति का कोई कोना ऐसा न था जिसे कलाकारों ने हमारे लिये सुरक्षित न कर दिया था, केवल उसे पढ़ने के लिये आंखें चाहिए। अन्ध-विश्वासी आंखें नहीं, धार्मिक असहिष्णुता की दृष्टि नहीं, समझने-बूझने वाली दृष्टि। वह दृष्टि जो भारत का दिल समझती है, उसकी महानता समझती है, उसकी दुर्बलता पहचानती है। एलोरा में चित्र के दोनों पक्ष विद्यमान हैं।

एक बहुत बड़े मन्दिर में स्त्री और पुरुष के प्रेम की सारी अवस्थाएँ और परिस्थितियां अङ्कित थीं। यहां जब मैंने एक पुरुष के बुत को देखा जो एक स्त्री को चूम रहा था तो मैं स्तंभित रह गया।

गाईड बोला "आप रुक क्यों गये ?"

मैंने कहा "यह अश्लीलता है, जीवित नग्न अश्लीलता।"

गाईड बोला "आप आगे तो बढ़िये।"

आगे बढ़ा तो हर क़दम पर कोक-शास्त्र खुला पाया। इससे अच्छे और सुन्दर दृश्य कहीं न पाये गये होंगे।

मैंने गाईड से पूछा "क्या एलोरा पर कोई सैंसर नहीं है ?"

गाइड ने कहा "यह कोई प्रकृति के विरुद्ध बात तो नहीं है। मैंने प्रायः देखा है कि कई जोड़े यहां आकर इन बुतों के देखने के बाद एक दूसरे को चूमने लगते हैं।"

मैंने कहा "प्यारे नादिर! तुम अपनी आंखों पर सैंसर बिठा लो, अन्यथा मुझे भय है कि.....।"

नादिर मुझे गाली देने लगा। मैं आगे बढ़ गया जहां एक देवी और देवता नग्न नृत्य में मग्न थे।

नग्न नृत्य !

नवाब आसमान जाह बहादुर यार जंगबहादुर बीसवीं शताब्दी में भी एक अन्तःपुर रखते थे। बेगमों के अतिरिक्त कनीज़ें, लौंडियां, बांदियां, मामायें, एक लम्बा-चौड़ा परिवार था, जो सैंकड़ों की गिनती में आता था। वे बड़े भारी जागीरदार थे, इसलिये बड़ा भारी अन्तःपुर भी रखते थे। अन्तःपुर के दरोग़ा जी पहले बाक़ायदा पुरुष थे लेकिन स्थाई बेकारी से उन्होंने यही उचित समझा कि थोड़ी सी "कांट-छांट" स्वीकार कर ली जाये और हिजड़ों में शामिल होकर अपने और अपने परिवार के लिये दाना-पानी जुटाया जाये। नवाब आसमान जाह बहादुर यार जंग ने भी उन्हें डाक्टरी निरीक्षण के बाद ही नौकर

रखा था क्योंकि अन्तःपुर का नियम ही यही है कि औरतों के इस भरे बाज़ार में साँड केवल एक हो, अन्यथा अन्तःपुर की पवित्रता पर चोट पड़ती है। नवाब साहब कोई तगड़े जवांमर्द नहीं थे। शताब्दियों के स्थायी भोग-विलास ने उनके शरीर और मस्तिष्क में बहुत सी विशेषतायें उत्पन्न करदी थीं अर्थात् पुरुष की आत्मा लग-भग लुप्त हो चुकी थीं, फिर भी वह कुश्तों से और बिजली, पानी, भाप की चिकित्सा द्वारा इतने बड़े अन्तःपुर का भ्रम बनाये हुए थे।

नवाब आसमान जाह बहादुर यार जंग बहादुर की आयु पैंतीस वर्ष से अधिक न होगी, लेकिन देखने में पचास से कम मालूम न होते थे। एक तो वह दिन को सोते थे और रात को जागते थे। फिर बचपन से उन्होंने कभी पानी न पिया था। जब प्यास लगी, पीने के लिए फ्रैंच वाईन मिली। जब भूख लगी, भारी खाना ही मिला। साधारण भोजन कभी न मिला। जब औरत की आवश्यकता हुई, बदकार औरत ही मिली। इस छोटे से जीवन में उन्होंने विलासी-जीवन के सारे रोग प्राप्त कर लिए थे; और इतना बड़ा अन्तःपुर स्थापित कर लिया था। इस अन्तःपुर में बहुत कम औरतें ब्याह कर रखी गई थीं। बाकी सब की सब 'दाख़िल' की गई थीं। कुछ एक आवारा सी औरतें थीं, कुछ रंडियों की संतान थीं, जिन्होंने एक-मुश्त रकम के बदले सौदे कर लिए थे। कुछ औरतें भगा कर लाई गई थीं; लेकिन एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी औरतों की थी जो प्रजा के सतीत्व के लगान स्वरूप आई थीं। प्रजा को भूमि पर लगान देना पड़ता है, उसे जंगल से लकड़ियां काटने के लिए टैक्स देना पड़ता है, उसे घर बनाने के लिए टैक्स देना पड़ता है, उसे फ़सल को सुरक्षित रखने के लिए फ़सल का एक भाग देना पड़ता है। इसी तरह उसे सतीत्व टैक्स भी देना पड़ता है कि उसके बिना गांव वालों की घरेलू प्रसन्नता सुरक्षित नहीं रह सकती। जब फ़सल पकती है तो जागीरदार अपना भाग लेता है। इसी तरह जब औरतें जवान हो जाती हैं तो जागीरदार अपना भाग

ले लेता है। लगान वह अपने ख़जाने में दाखिल कर लेता है और औरतें अपने अन्तःपुर में। यह जागीरदाराना सामाजिक जीवन का एक सीधा-सादा नियम है जिसमें ओठ हिलाने की बहुत कम गुँजायश है। नवाब आसमान जाह बहादुर यार जंग ने कभी इसमें कोई गुंजायश न रहने दी थी।

'नवाब' भी इसी सिलसिले में, सतीत्व टैक्स के सम्बन्ध में अन्तःपुर में लाई गई थी। 'नवाब' मिरज़ा की बेटी थी। मिरज़ा मुसलमान था और इस दृष्टि से उस इलाक़े में बादशाह समझा जाता था। मिरज़ा के वस्त्र फटे हुए होते थे। उसकी पत्नी के पास कपड़ों का एक ही जोड़ा था; और उसके घर में एक ही कमरा था जिसे वह एक ही समय में दीवाने-ख़ास, दीवाने-आम और गुसलख़ाने के रूप में इस्तेमाल करता था। यों तो वह इस इलाके में बादशाह था क्योंकि मुसलमान जागीरदार की प्रजा था और स्वयं किसान था। कौन जाने किसी समय उसके पूर्वज क्या कुछ थे! इस समय तो वह बहुत ही ऋणी और दरिद्र था। अन्य हिन्दू किसानों, और मुज़ारों, और खेत के मज़दूरों से वह ज़रा अलग-अलग रहता था, क्योंकि मिरज़ा बादशाह था; और बादशाह जनता से ज़रा अलग ही रहा करते हैं। यह अलग बात है कि मालिया, लगान, बटाई और जागीरदारी नियमों के सारे टैक्स उसे भरने होते थे दूसरे किसानों की तरह। फिर भी उसकी हैसियत अलग थी। नवाब उसकी इकलौती बेटी थी। दूर-दूर तक उसकी सुन्दरता की चर्चा थी। मिरज़ा उसे पास के गांव के मुसलमान पटेल के लड़के से ब्याहना चाहता था और वह निकाह हो भी जाता क्योंकि उस पटेल के लड़के को भी यह नाता बहुत पसन्द था लेकिन बुरा हो 'सतीत्व-टैक्स' का कि नवाब पर आसमान जाह बहादुर यार जंग की तबीयत आ गई। यों तो दूसरे इलाकों के यारजंगों की कोशिशें भी बराबर जारी थीं और कई बार नवाब को अगवा करने के मनसूबे बांधे जा चुके थे, लेकिन वह तो यूं समझिये कि भगवान् को

मिरज़ा की इज्जत रखनी थी कि मिरज़ा की इकलौती लाडली अपने इलाके के नवाब के अन्तःपुर में दाखिल की गई। मिरज़ा यही समझता था कि नवाब ने उसकी बेटी से अक़द किया है, हालांकि वास्तविकता यह थी कि अन्तःपुर में उसकी लड़की की हैसियत बान्दियों से कुछ अधिक न थी। पहले दिन ही उसे नंगा नचवाया गया, यह बात भी मिरज़ा को कभी मालूम न हुई और वह इसी बात पर गर्व करता रहा कि आखिर एक बादशाह की बेटी बेगम बनकर एक बादशाह के अन्तःपुर में दाखिल हुई है। यदि मिरज़ा वह रात का दृश्य देख पाता जब उसकी कँवारी लड़की को नग्न करके महफ़िल में अन्य औरतों के साथ नचवाया गया था, तो न जाने अपनी बादशाहत के सम्बन्ध में उसके ि चार कहां तक बदल जाते ! हां इसमें कोई सन्देह नहीं कि नवाब के विचार अवश्य बदल गये। पहले तो उसने वस्त्र उतारने में संकोच किया फिर जब उसके वस्त्र नोच-नोच कर तार-तार कर डाले गये, और उसके मुँह में मदिरा उंडेल दी गई, और उसे पन्द्रह-बीस नंगी औरतों के झुरमट में ले लिया गया तो उसे कुछ स्मरण न रहा कि वह कहां है, और क्या कर रही है, या उसके साथ क्या कुछ हो रहा है। नवाब आसमान जाह केवल कुछ घंटे उसके पास रहे और उसके बाद उसे सदैव के लिए भूल गये, क्योंकि अन्तःपुर में हज़ारों सुन्दर कार्य होते हैं, उनमें एक कार्य यह भी था कि जिस प्रकार के पत्थर के बुत एलोरा की गुफ़ाओं में सुरक्षित थे और जो स्त्री-पुरुष की काम-शास्त्र में वृद्धि का साधन बन सकते थे, वास्तविक जीवन में उनका चर्बा उतारा जाये। इस सम्बन्ध में नवाब को एक बार पुनः कष्ट दिया गया और एलोरा की उन गुफ़ाओं का हूबहू दृश्य नवाब आसमान बहादुर यार जंग के अन्तःपुर में खिंच गया। नवाब आसमान जाह एक-एक दृश्य को देखते आते थे और उसे एलोरा के खिंचे हुए फोटो से मिलाते जाते थे। कहीं कोई त्रुटि देखते तो उसे वहीं ठीक कर देते। जिस कुञ्ज में नवाब खड़ी थी वहां भी उन्हें दो तीन त्रुटियां

दिखाईं दीं जिन्हें ठीक करने के लिए जब वह आगे बढ़े तो नवाब ने उनका मुँह नोच लिया और ज़ोर-ज़ोर से चीखने-चिल्लाने लगी। नवाब आसमान जाह के चेहरे और गरदन पर कई रगड़ें आईं लेकिन जिसे भगवान् रखे उसे कौन चक्खे, नवाब बच गये और नवाब बेचारी की वह ठुकाई हुई कि कई दिन तक अंधेरी कोठड़ी में मूर्छित पड़ी रही। जब अच्छी हुई तो उस पर आठ-दस साहब छोड़ दिये गये, जैसे भूखे कुत्ते शिकार पर छोड़ दिये जाते हैं। उसके बाद नवाब ने दो बार अन्तःपुर से भागने का यत्न किया और असफल रही; और हर बार कोड़ों से पिटी। आखिर जब वह अन्तःपुर से भाग निकलने में सफल हो गई तो पिस्तौल की गोली उसके बायें बाज़ू को चीर कर पार हो गई। कई दिन वह खेतों में छुपती मारी-मारी फिरती रही। उस के बाप ने उसे आश्रय देने से इन्कार कर दिया और गांव के किसी अन्य व्यक्ति में यह साहस न था। वह मुसलमान पटेल का लड़का अब साफ़ कन्नी काट गया। इसी बीच में उसके बाज़ू का घाव बढ़ गया और गलने लगा। आख़िर जब किसानों के जत्थे बनाने वालों ने उसकी राम-कहानी सुनी तो उसकी सहायता की। अस्पताल में उसका बाज़ू काट डाला गया और जब वह अच्छी हो गई तो उन्हीं में शामिल हो गई। अब वह पर्दा न करती थी, क्योंकि विवाह के पहले दिन ही उसे नंगा नाचना पड़ा था; और अब उसे अपनी बादशाहत की वास्तविकता भी मालूम हो गई थी। अब वह जत्थे वालों के साथ गांव-गांव में घूमती थी पुरुषों की तरह, और किसानों को संगठित करती थी, और उन्हें बादशाहत की भयानक प्रवंचना सूचित करती थी और लोग उसकी कटी हुई भुजा को देखते, उसके लुटे हुए सतीत्व को देखते, उसकी घायल आंखों की घृणा को देखते और समझ जाते कि हज़ारों वर्ष के बाद उनके जीवन में वह भयानक घृणा, वह सच्ची घृणा आ रही है जो उन्हें पहली बार अपने भाग्य के विरुद्ध उकसाने पर बाध्य कर रही है और दक्षिण के खेतों में एक नई क्रांति का श्रीगणेश कर

रही है। सब किसान नवाब को बड़ी बहिन कहते थे हालांकि वह कठिनता से सत्रह वर्ष की लड़की होगी, लेकिन पिछले दो वर्षों ही में उसने तीन-चार हज़ार साल के अर्थ-शास्त्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, और मानसिक दृष्टि से उसकी गणना बड़ी-बूढ़ियों में होने लगी थी। लोग कहते हैं कि अपने दौरे के सम्बन्ध में वह एक बार एलोरा भी आई थी और उसके बुतों को देखकर प्रसन्न होती रही, और रोती भी रही; और जिन लोगों ने एलोरा को देखा है वे उसके प्रसन्न होने और रोने को समझ सकते हैं। जब मैं नग्न-नृत्य के दृश्य देख रहा था तो बाहर से लारी के भोंपू की आवाज़ सुनाई दी, और मैं अनमन सा बाहर चला आया। यहां पुलिस इन्स्पैक्टर और तहसीलदार साहब निपट-निपटा कर लारी में बैठ गये थे। उनके तुरन्त बाद ही मैं बैठ गया, परन्तु वे सुन्दर जोड़े ज़रा देर में निकले। उन लोगों के चेहरे लाल हो रहे थे और बाल परेशान थे, और वे स्वयं ही झेंपे जा रहे थे। जब वे लोग लारी में बैठ चुके तो मैंने कहा, "नज़हत बहिन! मैं आप को एक बादशाह की बेटी की कहानी सुनाना चाहता हूं, जो एलोरा की गुफ़ाओं को देखकर हंसी भी और रोई भी। आप पूछिये कि हंसी क्यों, और रोई क्यों?"

नज़हत ने कहा "हम नहीं पूछते" और फिर ड्राइवर से बोली "लारी चलाओ जी, जल्दी से।"

जब लारी चलने लगी तो मैंने बकना शुरू किया "सुनिये नज़हत साहिबा! एक थी बादशाह की बेटी..."

वह बोली "भाड़ में जाये तुम्हारी शहज़ादी, और चूल्हे में जाओ तुम।"

मैंने कहा "आप लोग अजन्ता और एलोरा देखने आये हैं और इनके बारे में किसी प्रकार की ऐतिहासिक बातें भी जानना नहीं चाहते?"

नज़्हत ने कहा—"हम तो सैर-तमाशे के लिए आये हैं, तुम्हारी तरह मग़जपच्ची करने नहीं आये।"

मैंने कहा—"मिस नज़हत, आप जिस वर्ग से सम्बन्ध रखती हैं वहां रुपये के सिवा और किसी चीज़ में दिलचस्पी नहीं ली जाती। आपके यहाँ हर चीज़ का महत्व छिछला छछोरा है। आपके लिये साम्राज्य और लोक-राज्य बराबर हैं। हिटलर और स्टालन में आपके लिये कोई फ़र्क नहीं है। आपके वर्ग ने जीवन के हर मोड़ पर मानव-इतिहास से विश्वासघात किया है। फ्रांस की क्रांति से लेकर आज तक चलते आइये, कहीं भी आप लोग खड़े रह सके? आपने कुछ टकों के लिये सदैव जनता का साथ छोड़ दिया। इस समय भी यही कर रहे हो तुम लोग, मैं कहता हूँ······"

नईम ने अपना घूंसा बिल्कुल मेरी नाक के सामने लाकर कहा "बौकिंसग जानता हूँ। ज्यादा बकवास की तो दो ही घूंसों में लुढ़कते नज़र आओगे।"

मैंने घृणा से अपना मुंह फेर लिया और ज़ोर से लारी के बाहर थूक दिया। पुलिस इन्सपैक्टर और तहसीलदार साहब ने क्रोध से मेरी ओर देखा। मैंने दोबारा थूक दिया। उन लोगों ने अपनी नज़रें सीधी सामने सड़क पर गाढ़ दीं और लारी के अन्दर फिर बैतबाज़ी शुरू हो गई।

जमील ने कहा:

क्यों जल गया न ताबे रूखे यार देख कर।
जलता हूँ अपनी ताकते दीदार देख कर॥[1]

---

१. प्रेमी के चेहरे की कान्ति देख कर मुझे जल कर राख हो जाना चाहिए था लेकिन मेरी देखने की शक्ति का बुरा हो कि यह गर्व मुझे प्राप्त न हुआ।

नक़्हत बोली :

रूखे निगार से है सोज़े जावदानिये शमाँ।
हुई है आतिशे गुल आबे ज़िन्दगानिये शमाँ॥[1]

नईम ने कहाः

आशक़ी सब्र तलब और तमन्ना बेताब।
दिल का क्या रंग करूँ खूने जिगर होने तक॥[2]

वसीम ने कहाः

दिल दिया जान के क्यों उसको वफ़ादार असद।
गलती की कि जो काफिर को मुसलमां समझा॥[3]

रिफ़त ने न जाने क्या उत्तर दिया, लेकिन मेरा दिल काफ़िर और मुसलमान की उलझनों में पड़ गया। न्याज़ हैदर एक मुसलमान था और अजन्ता के गाँव में एक काफ़िर की बेटी से प्रेम करता था। न्याज़ हैदर अजन्ता के कस्बे के डाक बंगले में आकर ठहरा था। वह नियमानुसार शराब के दो पैग पीकर सैर करने निकला। देर तक बन्ध से गिरते हुए पानी को देखता रहा, फिर अकेला ही पगडण्डी पर हो लिया जो सामने के खेतों से आती थी। रास्ते में वह काफ़िर की बेटी

---

१. प्रेमी के मुख की सुन्दरता देखकर दीपक को ईर्षा होती है और वह सदा के लिये जलता है अर्थात् उस फूल के सौन्दर्य की अग्नि दीपक के लिये अमृत बनी हुई है।

२. प्रेम में शीघ्र सफलता नहीं होती; वह सब्र चाहता है, और अभिलाषा अधीर है मृत्यु तक दिल को किस तरह सभालूँ क्योंकि सफलता तो मृत्यु के बाद होगी।

३. ऐ असद (गालिब का पहला उपनाम) उसे वफादार समझ क्यों अपना दिल दे दिया। कितनी भूल हुई कि एक नास्तिक को आस्तिक समझा।

मिल गई जिसने उसका दिल हर लिया। वह डाक बंगले के चौकीदार की बेटी थी और बड़ी बांकी और जवान थी, और न्याज़ हैदर के ख्याल में खरीदी भी जा सकती थी, लेकिन जब उसे पता चला कि वह खरीदी नहीं जा सकती तो उसे बड़ी हैरानी और घबराहट हुई। वह अजन्ता के गाँव में दो दिन ठहरने के लिये आया था लेकिन वह वहाँ पांच-छ: दिन ठहरा। वह एक चाय की कम्पनी का एजन्ट था। पहले दो दिनों में उसने कस्बे के दुकानदारों को चाय के बंडल बांट दिये, अब उसे वहां से चला जाना चाहिए था लेकिन काफ़िर की पुत्री की मीठी नज़रों ने उसे जाने न दिया, और वह तीन दिन और उसी डाक बंगले में पड़ा प्रेम की चटकीली बातों से प्रसन्न होता रहा। वह काफ़िर की पुत्री उसकी बात नही समझ सकती थी, लेकिन उसका बाप समझ सकता था इसलिये उसने शीघ्र ही न्याज़ हैदर को उसकी गलती बता दी। वह एक ब्राह्मण था और उसकी बेटी एक ब्राह्मण की बेटी थी, और उसका नाम शान्ता था, और चाय बेचने वाले एजन्ट का नाम न्याज़ हैदर था और वह मुसलमान था।

न्याज़ हैदर के दिल में शान्ता कुछ इस प्रकार खुबने लगी जैसे नरम धरती में पौदा अपनी जड़ें मज़बूत करता है, और फिर कली की तरह फूट निकलता है। ऐसा ही हरा-भरा प्रेम था न्याज़ हैदर का। शान्ता उसकी भाषा न समझते हुए भी उसकी बोली समझने लगी। वह बोली, जो धर्म और जाति से ऊंची होती है। वह प्रतिदिन रात के समय उसके लिये खाना लाती। दो रोटियां होतीं सब्ज़ बाजरे की और एक भुना हुआ बैंगन और बस। न्याज़ हैदर ने इससे अच्छा खाना किसी डाक बंगले में न खाया था। वह हर रोज़ उसी खाने के लिये कहता और शान्ता भी रात को उसके लिये वही खाना लाती और उसकी मेज़ पर रख कर आंखें झुकाये चली जाती।

न्याज़ हैदर पांच दिन डाक बंगले में रहा, आखिर चला गया

क्योंकि वह चाय की कम्पनी का एजन्ट था और कम्पनी काम देखती है, लाभ देखती है, प्रेम नहीं देखती। थोड़े समय के बाद न्याज़ हैदर फिर उसी गाँव में आया और इस बार सात दिन रहा। अब उसने टूटी-फूटी मराठी भी सीख ली थी और शान्ता से लोक-गीतों का अर्थ पूछा करता था। अब के बैंगनों का मौसम न था इसलिये वह सब्ज़ रोटियों के साथ मसाले में भुने हुए आलू खाता और ठंडा पानी पीकर शान्ता के बनाये हुए खाने की प्रशंसा करता और शान्ता उसकी ओर मीठी कृपा-दृष्टि से देखती। अबके चौकीदार का स्वर भी अधिक कोमल था, लेकिन आखिर था ब्राह्मण ही, इसलिये आठवें दिन न्याज़ हैदर फिर वहां से निष्फल लौट आया।

दो-तीन मास तक न्याज़ हैदर इधर-उधर दूसरे गावों में फिरता रहा, आख़िर वह फिर अजन्ता के गांव में पहुँचा। वही डाक बंगला। वही चौकीदार अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। उसे देखकर चौकीदार ने उसकी बहुत आवभगत की, लेकिन शान्ता कहीं नज़र न आई। न्याज़ हैदर ने पूछा तो चौकीदार ने बताया कि वह कल आयेगी। न्याज़ हैदर रात भर जागता रहा। दूसरे दिन वह दिन भर उसकी प्रतीक्षा करता रहा। रात को वह आई। थाली में उसने बाजरे की दो सब्ज़ रोटियां रखी थीं; मक्खन में रची हुई रोटियां और कुछ मिरचों का अचार था और भुना हुआ बेंगन। उसने चुपके से न्याज़हैदर के सामने खाना रख दिया।

न्याज़हैदर ने खाना अलग रख दिया "कहां थीं तुम, मैं कल रात से सोया नहीं।" उसकी आवाज़ में क्रोध भरा हुआ था।

शान्ता सिर झुका कर रोने लगी। धीरे-धीरे उस के आंसू मेज़ पर गिरते गये।

न्याज़हैदर ने एकाएक उसकी रङ्गीन साड़ी की ओर देखा, उस के लाल टीके की ओर देखा, जो उस के माथे पर चमक रहा था और

उसका दिल भर आया; और वह भी हौले-हौले रोने लगा। जैसे अब उस संसार में उन दोनों का कुछ न रहा हो। जैसे आकाश और धरती जल कर राख हो गये हों, और कहीं पानी की एक बूंद बाकी न हो।

न्याज़हैदर ने पूछा "यह कब हुआ ?"

शान्ता ने कहा "पिछले महीने, चाँद की दसवीं को।"

पिछले महीने चाँद की दसवीं को न्याज़हैदर नाचनील के कस्बे में था। उस रात उसे नींद नहीं आई थी, क्योंकि पड़ोस में ब्याह था और औरतें रात भर गीत गाती रहीं थीं और सुनते-सुनते उस के दिल का नासूर रिसने लगा था और कहीं प्रातःकाल उसकी आँख लगी थी कि उस ने सुना जैसे शान्ता उसे पुकार रही है—जल्दी आ जाओ, जल्दी आ जाओ, ऐसे में तुम कहाँ हो ? और वह हड़बड़ा कर उठ बैठा। कोई भी तो न था।

न्याज़हैदर ने कहा "ग़लती मेरी है, तू ने मुझे बुलाया था, मैं ही न आ सका।"

शान्ता ने कहा "मैंने अपने दिल में हज़ार बार तुम्हें बुलाया होगा। अब भी बुलाती हूँ, जीवन भर तुम्हें बुलाती रहूँगी। चाहे तुम मुसलमान हो और मैं ब्राह्मण हूँ, और बापू कहते हैं कि तुम्हारा मेरा मेल कभी नहीं हो सकता।"

न्याज़हैदर देर तक चुप रहा, बहुत देर तक चुप रहा। आठ-सौ वर्षों से वह अपने और शान्ता के बीच में एक पुल बनाता चला आया था लेकिन यह पुल कभी पूरा न हो सका क्योंकि उसकी नींव ग़लत थी। आठ-सौ वर्षों से वह शान्ता के पिता के पास अपना सलाम भेजने की कोशिश करता रहा और आठ-सौ साल तक शान्ता का बाप उस के सामने अपना हिन्दू-धर्म भेजने में जुटा रहा और यह सौदा किसी तरह तै न हो सका और यह पुल धर्म की दीवारों पर न बन सका। एकाएक उस की सब नीवें ढह गईं और न्याज़हैदर चीखें मार-मार कर रोने

लगा और शान्ता ने अपने आँचल से उसके आँसू पोंछे।

न्याज़हैदर ने कहा "अब मैं जा रहा हूँ, तुम्हें फिर कभी न मिलूंगा।"

शान्ता घबराहट में बोली "अब तुम क्या करोगे?"

न्याज़हैदर ने कहा "चाय नहीं बेचूंगा अब, अब मैं नये-नये गीत लिखूंगा। शांता, यह गीत सिर्फ़ धरती के होंगे, सिर्फ़ प्रेम के होंगे। मैं तेरा और तू मेरी न हो सकी लेकिन ये गीत हम दोनों के होंगे। ये गीत तुम तक पहुंचेंगे और तू उन्हें गायेगी और तेरे बच्चे-बाले उन्हें गायेंगे और इस तरह सारे संसार में हमारे प्रेम के गीत गूंजेंगे और इन्सान और इन्सान के बीच में एक नया पुल बनायेंगे।"

शांता ने आँचल फैला कर प्रार्थना की "जाओ, पारंग तुम्हें सदा सुखी रखें।"

वसीम ने कहा :—

क्या वह नमरूद की खुदाई थी,
बन्दगी में मेरा भला न हुआ।[1]

नज़हत बोली :—

आए है बेकसिये इश्क पे रोना गालिब।
किस के घर जायेगा सैलाबे बला मेरे बाद॥[2]

---

१. क्या वह नमरूद (एक आस्तिक बादशाह जिस ने हज़रत इब्राहीम को आग में जला दिया था) की बादशाहत थी कि पूजा उपासना के बावजूद मेरा कुछ न बना।

२. ऐ गालिब! मेरे बाद प्रेम भी बेकस हो जायेगा। इस बेकसी के विचार से रोना आता है। मैं तो मरने के बाद कब्र में चला जाऊँगा लेकिन यह बेकसी कहाँ जायगी?

नईम बोला :—

दिल लगा कर लग गया उन को भी तनहा बैठना।
हाये अपनी बेकसी की पाई हम ने दाद यां॥[1]

रिफ़त ने कहा :—

नफ़स न अंजमने आरज़ू से बाहर खैंच।
अगर शराब नहीं इन्तज़ारे साग़र खैंच ॥[2]

जमील बोला :—

चलता हूँ थोड़ी दूर हर एक तेज़ रौ के साथ।
पहचानता नहीं हूँ अभी राहबर को मैं ॥[3]

लारी अजन्ता की पहाड़ियों के दामन में आकर रुक गई। यहां से एक छोटा सा रास्ता एक छोटी सी घाटी से होकर अजन्ता की गुफाओं को जाता था। अजन्ता की पहली गुफा में हम ने बुद्ध की एक बहुत बड़ी प्रतिमा देखी। इतनी बड़ी मूर्ति एलोरा में भी न देखी थी। गाइड ने लैम्प जलाया और बुद्ध का चेहरा पहले से भी अनुभूति-पूर्ण दिखाई देने लगा। इतनी सुन्दरता से तराशा हुआ चेहरा था वह कि आँखों पर पलकों की छाया का भी भ्रम होता था। फिर गाइड ने लैम्प दूसरी ओर ले जाकर उस बुत पर दूसरे कोण से प्रकाश डाला और बुद्ध का बुत मुस्कराने लगा। यह एक मीठी सूझ-बूझ रखने वाली,

---

१. किसी से दिल लगा कर वह भी एकांत के इच्छुक हो गये। इस बेकसी और विवशता की दाद हमें क्यामत के बाद मिल सकती थी, लेकिन हमें यहीं मिल गई।

२. अभिलाषाओं की महफ़िल में शामिल रहने के विचार को न त्याग। यदि इस महफ़िल में तुझे शराब (प्रसन्नता) प्राप्त नहीं तो शराब के प्याले की प्रतीक्षा कर, तेरी बारी भी आजायेगी।

३. मैं अपनी 'जिल और अपने नेता को नहीं पहचानता, हर तेज़ चलने ाले के साथ थोड़ी दूर तक चलता हूं।

संसार के दुःख-दर्द को पहचानने वाली मुस्कराहट थी। उस समय मुझे ऐसा लगा जैसे मानवता अपने इतिहास के सारे पन्ने मेरे सामने उलट रही हो और शताब्दियां अपनी तहें खोल कर मेरे सामने बखेरती जा रही हों। बुद्ध की प्रेम-भरी मुस्कान में मानवता की व्याख्या उजागर होती दिखाई दी, जैसे एक क्षण क़तरा समुद्र हो जाये और चारों ओर से समुद्र उमड़ पड़े। जैसे कोई मुझ पर उत्पत्ति के समस्त भेद और आन्तरिक समावेश प्रकट कर दे। तू मानव है, तू वहशी है, तू अर्ब है, तू यहूदी है, तू अमरीकी है, तू रूसी है, तू भारती है, तू ईरानी है, तू जैनी है, तेरे रुधिर में गीता का उपदेश है, मुहम्मद का कलमा है, मसीह की नम्रता है, बुद्ध का नग़मा है, कबीर का गीत है, चिश्ती का आत्मवाद है, नानक का सन्देश है, तुझ में समस्त सभ्यतायें गड-मड हो जाती हैं, क्योंकि तू मानव है जो आगे चला जा रहा है, अपनी विरासत को संभालता हुआ, अपने इतिहास के पन्ने उलटता हुआ। नये पन्ने पर अपने रक्त से लिखता हुआ, नया मानव जिसका खमीर उसी पुराने मानव से उठा है। बुद्ध की मुस्कान में यह सब कुछ था, सब लोग मंत्र-मुग्ध से खड़े थे। वे तीनों सुन्दर लड़कियां, वे तीनों सुन्दर लड़के। वे सेठ जी और उनके गुमाश्ते, और वह कलाकार। जैसे आदमी अपने से महान् आत्मा के सामने झुक जाये और कोई महान् संकल्प कर ले और उसकी सत्ता को मान ले।

मैंने कहा "यह बुद्ध की प्रतिमा किसी महान् कलाकार की रचना होगी।"

गाइड बोला "इस में कलाकार का प्रेम बोलता मालूम होता है।"

लेकिन अजन्ता में केवल यही प्रतिमा न थी। यहां बुद्ध की सैंकड़ों मूर्तियां थीं और उसके जीवन की समस्त घटनायें चित्रित थीं। हज़ारों वर्ष पुराने चित्रों में अभी तक रंगों की वही आब-ताब थी, वही चमक-दमक! सचमुच अजन्ता बड़ी सुन्दर थी। कल्पना से भी अधिक

सुन्दर ! अजन्ता में पांच हज़ार वर्ष पहले की साड़ियों के नमूने थे। जो आजकल की साड़ियों से अच्छे थे। रानियों के लिये सुन्दर महल थे जो पर्दों और चौकियों और सोफ़ासैट जैसे फर्नीचर से सजे हुए थे। बाल बनाने के ढङ्ग कोई एक सौ से ऊपर थे। सौंदर्य-सम्बन्धी पूरी कला इन चित्रों में थी और किसी रूप से भी मेक्स फैक्टर से कम न थी। पुरुषों ने मोज़े पहन रखे थे, दस्ताने और गुलूबंद और स्पोर्टस की तरह के अंग्रेज़ी कोट, जो हम समझते थे कि भारत में अंग्रेज़ ही लाये थे, लेकिन अजन्ता के चित्रों में वे आज से हज़ारों साल पहले मौजूद थे, शीश महल और आभूषण और फ़ानूस, भोग-विलास के समस्त साधन जुटे हुए थे और महलों में चहल-पहल थी और राजा लोग शिकार खेलते थे और रानियां सोलह सिंगार करती थीं, और स्त्रियां इतनी सुन्दर होती थीं कि अब अजन्ता के अतिरिक्त ऐसी स्त्रियां कहीं नहीं मिलतीं। ऐसी पतली-पतली उँगलियां, ऐसी नुकीली आँखें, ऐसी पतली-पतली कमरें, भगवान् जाने उस युग में स्त्री किस तरह बनाई जाती होंगी। वह बीज तो अब लुप्त हो गया है शायद !

बहुत देर तक हम लोग गुफाओं में टहलते रहे। सुन्दर लड़कों ने सुन्दर लड़कियों की कमरों में बाहें डाल कर उनके कानों में प्रेम के सन्देश भी पहुंचाये और दीवारों पर अर्धनग्न स्त्रियों की आंखें कनखियों से उन्हें देखती रहीं। फिर गुफ़ाओं से निकल कर नीचे अजन्ता नदी पर चले गये। चारों ओर ऊँची-ऊँची पहाड़ियां थीं और यह अजन्ता एक अंधी पर्वतावलियों में बन्द थी। पानी धीरे-धीरे सिसकियां भरता हुआ बह रहा था। किनारों पर बड़े-बड़े रंगीन पत्थर पड़े थे। हरे, लाल, पीले और नारंजी पत्थर, इन्हीं पत्थरों के रंग और रोग़न से आज से हज़ारों वर्ष पूर्व इस अजन्ता के नैन-नक्श उभारे गये थे, वह अजन्ता, जिस में आज से हज़ारों वर्ष पूर्व की भारतीय समाज के एक विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व किया गया था। लग-भग बीस-पच्चीस गुफ़ाओं का सिलसिला पहाड़ी की छाती पर फैला हुआ था। अंतिम

गुफ़ायें बिल्कुल अपूर्ण थीं और बहुत छोटी-छोटी थीं। यहाँ चित्र भी अपूर्ण थे और मूर्तिकार ने पत्थरों पर रेखायें खैंच कर नक्श अधूरे छोड़ दिये थे। मालूम होता था अभी कोई भिक्षु कलाकार आयेगा और पत्थर काटने का सामान लेकर इन अपूर्ण मूर्तियों को पूरा करना शुरू कर देगा। लेकिन कोई भिक्षु नहीं आया। नदी बहती रही। लोग एक गुफ़ा से दूसरी गुफ़ा में जाते रहे। फिर दिन ढल गया और आकाश पर चाँद अजन्ता के बुझते हुए फ़स्क्र की तरह मद्धम २ नज़र आने लगा और लारी के भोंपू ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाना शुरू कर दिया।

लारी अजन्ता की चढ़ाई चढ़ आई। वह अजन्ता के गांव से भी आगे निकल गई। यहां सड़क के किनारे कपास का एक बहुत बड़ा खेत था, और उस में एक किसान, उसकी पत्नी, उस की लड़की और एक नन्हा सा लड़का कपास चुन रहे थे। जब लारी गुज़री तो वे लोग कपास चुनते-चुनते खड़े हो गए और आश्चर्य से हमारी ओर देखने लगे। किसान के शरीर पर केवल एक लंगोटी थी। छोटा बच्चा नंगा था। पत्नी और लड़की यदि स्त्रियां न होतीं तो वे भी नंगी होतीं। फिर भी उनके कपड़े तार-तार थे। किसान की बेटी बड़े आश्चर्य और चाव से लारी में बैठी हुई सुन्दर लड़कियों को तकती रही। वह लड़की स्वयं भी कुछ कम सुन्दर न थी, परन्तु उसके शरीर को कभी अच्छे कपड़े न मिले थे और उसने कभी स्नानागार न देखा था, उसने कभी पुलाओ न खाया था, और कभी ग़ालिब की कविता न सुनी थी। जब हम अजन्ता देखने जा रहे थे तो उसी सड़क के किनारे उसी खेत में ये लोग कपास चुन रहे थे। वे भोर के धुंधलके में रूई के गाले चुनने आए थे और जब सूर्य अस्त हो रहा था और हम लोग अजन्ता देख कर वापस घरों को जा रहे थे, वे लोग अभी तक उस खेत में कपास चुन रहे थे। लारी आगे निकल गई, और किसान की आँखें बहुत देर तक हमारी लारी का पीछा करती रहीं। वे आँखें जैसे

कह रही थीं---'तुम अजन्ता देख कर आ रहे हो, जब तुम अजन्ता देखने जा रहे थे उस समय अभी भोर के तारे फीके न पड़े थे और मैं और मेरी पत्नी, और मेरी बेटी, और मेरा नन्हा लड़का---इसी खेत में काम कर रहे थे, और अब तुम अजन्ता देख कर वापिस जा रहे हो और हम लोग अभी तक इस खेत में काम कर रहे हैं। हमने अजन्ता नहीं देखी। वर्षों से अजन्ता के गाँव में रहते हुए भी अजन्ता नहीं देख सके, क्योंकि अजन्ता गुफ़ाओं में बन्द है। बुद्ध ने अजन्ता गुफ़ाओं में बनाई, फिर हिन्दू राजाओं ने अपने महलों में और मुगलों ने अपने अन्तःपुरों में और मकबरों, में; और अंग्रेज़ों ने अपने बंगलों में; और तुम ने अपने घरों और फ्लैटों में; और इस प्रकार यह सुन्दर, कोमल अजन्ता एक गुफ़ा से दूसरी गुफ़ा में पहुँचती जा रही है। आओ इस सुन्दरता और कोमलता को गुफ़ाओं से निकाल कर बाहिर ले आयें और इसे खेतों और कारख़ानों में फैला दें। अजन्ता के पुजारियो! अजन्ता के मालिको, अजन्ता के काहनो! आओ कि इसी में तुम्हारी गति है, इसी में मेरी प्रसन्नता है, इसी में मानवता की चरम-सीमा है। तुम ने देखा कि अजन्ता गुफ़ाओं में रह कर, पथरीली दीवारों की रक्षा में रह कर भी जीवित नहीं रह सकी, यह हिन्दू अजन्ता, मुस्लिम अजन्ता और पश्चिमी अजन्ता! आओ, मेरे साथ मिल कर एक नई अजन्ता बनाओ। एक नई अजन्ता, जिस की नींवें मेरे खेतों में हैं, और इसलिए अमिट हैं, अजर हैं, अमर हैं।'

वह अर्ध-नग्न ब्राह्मण देर तक खड़ा रहा और हमारी लारी की ओर देखता रहा। उस ने शायद यह सब कुछ न कहा था। शायद मेरे कानों ने भी यह सब कुछ न सुना था, क्योंकि मैं तो उसकी लड़की की ओर देख रहा था जिसका चेहरा प्रसन्नता और आश्चर्य से लारी में बैठी हुई सुन्दर लड़कियों की ओर झांक रहा था, और जिस के हाथ में रूई के सफ़ेद फूल थे और उसकी शरमाई हुई आँखों की मौन भाषा में कंवारपन की स्वच्छता झांक रही थी। वह उस रूई के टापू में

खड़ी किसी काल्पनिक जगत् में गुम-सुम, सब से अलग, बहुत दूर होकर मुस्करा रही थी। मैंने उसे देखा, उसने मुझे नहीं देखा। वह बहुत दूर थी। वह मुझे सुन न सकती थी, मैं उसे समझा न सकता था। हाँ वह मुस्कराहट जैसे बार-बार मुझे कह रही थी—'मैं मुस्कान नही हूं, मैं तो एक प्रकाश हूँ उस ऊषा का, उस नई अजन्ता का जो अभी यहाँ आया नहीं, जो अभी दूर, बहुत दूर, उन घूमते हुए मैदानों और खेतों से परे क्षितिज पर मुस्करा रहा है।'

लारी के मुसाफ़िर चुप थे। सूर्य अस्त हो रहा था। नईम धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा :—

इक निगारे आतिशे रुख़ सर खुला।[1]

---

१. अग्नि की तरह दहकते हुए चेहरे वाली एक प्रेमिका, जिसके केश खुले हैं।

: ३ :

मरने वाले साथी की मुस्कराहट

साथी भारद्वाज से मेरी मुलाक़ात १९३७ में लाहौर में हुई थी। उन दिनों भी पार्टी अवैध्य घोषित हो चुकी थी। और पार्टी के साथी 'अंडर ग्राऊंड' हो गये थे। भारद्वाज का रंग सांवला, कद छोटा और शरीर दुबला-पतला था। उसे देखकर यह अनुमान ही नहीं हो सकता था कि इस मिट्टी के पुतले के भीतर कितनी ज्वाला छुपी हुई है और यह शरीर इतना परिश्रम कर सकता है, अपने ऊपर इतनी विपदायें झेल सकता है जो एक राष्ट्रवादी और समाजवादी को अपने जीवन में पेश आती रहती हैं।

मैं उन दिनों लॉ कालेज में पढ़ता था और बौद्धिक रूप से इतना श्रद्धालु नहीं था जितना कि व्यक्तित्वोपासक। भारद्वाज का व्यक्तित्व मुझे लेश-मात्र भी प्रभावित न कर सका। उन दिनों पंजाब में कांग्रेस के भीतर खेंचातानी चल रही थी और युवकमंडली उसके राजनीतिक मतभेदों से ऊब कर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की ओर आ रही थी। समाजवादियों का नारा था—"पापुलर फ्रंट"। अतएव उन दिनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में समाजवादी और कम्यूनिस्ट रेडिकल डैमोक्रैटिक पार्टी के मेम्बर, और पुरानी विद्रोही पार्टी के सदस्य, और नौजवान भारत सभा के जोशीले साथी, और अराजकतावादी, आतंकवादी सभी पाये जाते थे। यह पापूलर फ्रंट अवश्य था पुराने कांग्रेसियों के विरुद्ध, परन्तु फ्रंट नहीं था। दिन-रात ब्रेडलॉ हाल में

जलसे होते और साथियों की परामर्श-समिति में किसी क्रियात्मक प्रोग्राम पर विचार करने की अपेक्षा यह बहस छिड़ जाती कि अमुक व्यक्ति सी० आई० डी० का है या नहीं ? मैंने पूरे एक वर्ष तक ये मीटिंगें देखी हैं जिनमें सिवाय इसके और कुछ नहीं हुआ कि कुछ साथियों पर सी० आई० डी० के आदमी होने का आरोप लगाया गया। और इसके उत्तर में उन्होंने दूसरे साथियों पर आरोप लगाये और पूरे एक वर्ष में इस पापुलर फ्रंट में इसके अतिरिक्त और कोई काम नहीं हुआ; और अन्त में यह कोई भी निश्चय न कर सका कि कौन सी० आई० डी० में है और कौन नहीं है।

इन्हीं दिनों जबकि पंजाब के नौजवानों में हिंसात्मक विद्रोह का भाव पाया जाता था और वह अपने सामने कोई सीधा मार्ग न देख कर कभी अराजकता की ओर झुकते थे और कभी आतंक फैलाने के लिए तय्यार हो जाते, कभी समाजवादियों में घुसने की कोशिश करते तो कभी रेडिकल डेमोक्रैटिक पार्टी के फट्टे में टांग अड़ाते, इन्हीं दिनों में मेरी मुलाकात स्वर्गीय भारद्वाज से हुई। लाहौर में उनका आगमन बिल्कुल गुप्त रखा गया। केवल कुछ लोगों को ही इसका ज्ञान था।

उनके आगमन से कुछ समय पूर्व समाजवादी राजनीति को सुलझाने के कई प्रयत्न किये जा रहे थे—लाजपतराय भवन में धड़ाधड़ सभायें हो रही थीं और पंजाब-भर के नौजवान समाजवादी सदस्य इनमें भाग लेने के लिए बुलाये गये थे। वास्तव में निश्चय यह करना था कि अमुक व्यक्ति खुफिया पुलिस से सम्बन्ध रखता है अथवा नहीं ? परन्तु सभा के बाहर जनता में कांग्रेसी सदस्यों में और स्वयं सरकार के हलकों में यह चर्चा थी कि पंजाब के समाजवादी नौजवान क्रांति की तय्यारियां कर रहे हैं। अतएव समाचार-पत्रों में भी इसका वर्णन हुआ और खुफिया पुलिस के सैंकड़ों सिपाही, लाजपतराय भवन

से ब्रैड लॉ हाल, गवर्नमैंट कालेज और सनातन धर्म कालेज और म्युनिसिपल बाग़ में चारों ओर फैले हुए थे। मुझे स्मरण है कि हम लोग कई बार नाश्ता करना आदि सब कुछ भूल जाते थे और केवल आरोपों से अपना पेट भरते थे। और जब कभी सभा के थके-हारे बाहर निकलते तो प्रैस वाले हमें घेर लेते। प्रतिदिन यही पूछते "क्या फैसला हुआ ?"

हम लोग बड़ी रुखाई से उत्तर देते "हो जायेगा, देखते जाओ" और फिर यह खबर खुफिया पुलिस के लोगों तक इस रूप में पहुँचती "क्रांति हो जायेगी, देखते जाओ।" और इन्सपैक्टर काँपते हाथों से अपना पिस्तौल टटोलने लगते।

ये सभायें कदाचित् पांच या छः दिन होती रहीं। इनमें कुछ तो बड़ी सभायें होती थीं और कुछ छोटी। जिनमें विशेष-विशेष टुकड़ी के सदस्य ही भाग ले सकते और जहां वे ये फैसला करते कि अब बड़ी सभा में पहुँच कर हमारी टुकड़ी को कौनसा पैंतरा बदलना होगा, और क्या ढंग अपनाना होगा। छटे या सातवें दिन लाजपतराय भवन की लाइब्रेरी के ऊपर एक कमरे में एक टुकड़ी की सभा हुई। उसमें साथी भारद्वाज भी शामिल हुए। और मैंने पहली बार उन्हें यहीं देखा। मुझे उनके बारे में बहुत कुछ कहा गया था "वह यहां पार्टी को विस्तार देने के सम्बन्ध में आये हैं।" "बड़े उच्चकोटि के नेता हैं।" "अंडर-ग्राउंड रह कर सारे देश का दौरा कर रहे हैं।" "उन्हें आज तक कोई गिरफ्तार नहीं कर सका' आदि। परन्तु मैं तो भारी-भरकम और तोंदियल नेताओं से प्रभावित होता था इसलिए उनके व्यक्तित्व का मुझ पर कुछ प्रभाव न पड़ सका। खैर, यह तो 'पहली नज़र' की बात थी। परिचय के बाद बातें शुरू हुईं और वहीं सी० आई० डी० का मामला सामने आया। अब जो भारद्वाज ने साथियों को आड़े हाथों लिया तो मैं देखता ही रह गया। जैसे भारद्वाज की जिह्वा

से अग्निबाण निकल रहे थे, और साथियों के आरोपों पर धड़ाधड़ पड़ रहे थे। आंखों में ज्वाला नाच रही थी और उनका सारा चेहरा बदल गया था, कदाचित् यह वह भारद्वाज न था जो अभी दो मिनट पूर्व परिचय के समय सबसे हंस-हंसकर बातें कर रहा था। हमारी इस सभा में बुद्धिमत्ता के देव भी बैठे हुए थे और उन्होंने अनगिनत दलीलें देकर भारद्वाज को प्रभावित करना चाहा, परन्तु वह भूल पर थे, इसलिए उनकी एक न चली और भारद्वाज ने पहले तो व्यंग्यपूर्वक इस मामले को सुलझाया जो पंजाब की समाजवादी-राजनीति का बहुत बड़ा अंग था—अर्थात् कौन कर्मचारी खुफिया पुलिस से सम्बन्ध रखता है। उसके बाद तेज़ाबी स्वर में उसका उचित महत्व जताया और बताया कि यदि यह मामला इस समय न सुलझ सकता हो तो क्या यह सम्भव नहीं कि छोटे-छोटे मामलों को ही ले लिया जाये। मज़दूरों और किसानों में भी काम किया जा सकता है, और विद्यार्थियों में भी। और अराजकता, आतंकवाद से पृथक् रह कर एक संगठित पार्टी बनाई जा सकती है जो विद्यार्थियों के सुधार के लिये कार्य कर सके। फिर उन्होंने शोषक जन-क्रांति और समाजवादी क्रांति के दर्जे बताये और मैं इस दुबले-पतले से व्यक्ति की ओर आश्चर्य से देखता रहा। बुद्धि के पुतलों ने भारद्वाज की दलीलों को कई बार काटने की कोशिश की, लेकिन उन्हें हर बार मुँह की खानी पड़ी। फिर बात का रुख गुट-बन्दी और गिरोह-बन्दी के कोमल भेद की ओर मुड़ गया। फिर कुछ ऐसी बातें भी निश्चित हो गईं जो इससे पूर्व अनेकों बार सभायें कर-कर के भी हम निश्चित न कर सके थे। इन बातों को कागज़ के टुकड़ों पर लिखा गया और फिर सब लोग उन पर हस्ताक्षर करने लगे।

इतने में दरवाज़ा खटका।

सब लोग मुड़ कर देखने लगे।

कौन है ?

पुलिस है दरवाज़ा खोलो।

पुलिस!

कमरे में अंधेरा था। फिर जैसे अंधेरा और बढ़ गया। कमरे का एक दरवाज़ा लाइब्रेरी की ओर खुलता था। उधर भी पुलिस थी। एक दरवाज़ा लाला अचिन्तराम के कमरे की ओर था, वहां भी पुलिस थी और कामरेड भारद्वाज को हर हालत में पुलिस के हाथों से बचाना था। एकाएक कुछ साथियों ने कुरसियां उठा कर हाथों में ले लीं—भारद्वाज ने तुरन्त उठ कर जल्दी-जल्दी कागज़ के टुकड़ों को फाड़ा और उन्हें निगलना शुरू कर दिया। वह दृश्य अब भी मेरे सामने है। वह मेज़ के कोने पर खड़ा कागज़ फाड़-फाड़ कर जल्दी-जल्दी निगल रहा था। हम लोग कुर्सियां, स्टूल उठाये हुए खड़े थे। पुलिस दरवाज़ा तोड़ रही थी और भारद्वाज को बचाने की कोई शकल नज़र न आती थी। एकाएक भारद्वाज ने पिछली ओर की खिड़की खोली और नीचे की ओर देखा—दो मंजिल नीचे की ओर, जहां एक नये फ्लैट की दीवारें उठाई जा रही थीं। ये दीवारें आधी मंजिल तक आ चुकी थीं। भारद्वाज ने खिड़की में बैठ कर और टांगें दूसरी ओर लटका कर कहा "अच्छा, तो मैं चलता हूँ।"

"क्या करते हो—मर जाओगे" एक साथी ने कहा।

"मैं नहीं मरूँगा। छलांग लगा कर इन दीवारों पर कूद जाऊँगा और वहां से छलांग लगा कर नीचे आंगन में, जहां किसी आदमी का घर है—फिर देखा जायेगा।"

फिर कामरेड भारद्वाज ने मेरी ओर देखा। "तुम भी चले आओ। तुम इस सभा में पहली बार आये हो, पुलिस को तुम्हारा पता नहीं चलना चाहिये।"

मैंने नीचे—दो मंजिल नीचे—की ओर भयभीत दृष्टि से देखा।

भारद्वाज ने छलांग लगाते हुए कहा "आओ।"

और वह नीचे कूद गया ।

मैं भी तुरन्त ही कूद गया ।

हमारे पांव आधी बनी हुई दीवारों से टकराये, फिर वहां से उछल कर हम लोग नीचे आंगन में जा पड़े । दो मंजिल नीचे ! यहां आंगन में एक स्त्री सो रही थी । वह जाग उठी । हमें देख कर उसकी घिग्घी बंध गई । मैं उस के कण्ठ की ओर देख रहा था कि वह चिल्लाना चाहती थी, परन्तु मारे भय के उस की आवाज़ न निकलती थी । हम जल्दी से आंगन में से भीतर चले गये । सामने कमरे में प्रसिद्ध काँग्रेसी-नेता देवराज सेठी बैठे हुए थे, बोले—"आप कैसे आये, बाहर से तो दरवाज़ा बन्द है, पुलिस ने घेरा डाल रखा है ।"

हम ने कहा, हम ऊपर से आये हैं—और अब बाहर निकलना चाहते हैं ।

देवराज सेठी बहुत देर तक सोचते रहे । यही कोई दो चार मिनट; फिर बोले, "एक रास्ता है इस से आप बाहर के आखिरी दरवाज़े तक तो पहुँच जायेंगे, लेकिन वहां भी आपको पुलिस मिलेगी ।"

मैंने कहा "तो यहीं रुक जायें ।"

भारद्वाज ने कहा "नहीं, यह ग़लत है । इस से इन पर आंच आयेगी और फिर यह अनुचित है ।" फिर सेठी साहेब की ओर मुड़ कर कहा "आप वह रास्ता बताइये ।"

एक क्षण के विलम्ब के बाद उन्होंने हमें रास्ता बताया । हम आगे बढ़ गये । सब ओर ठीक-ठाक था । और आगे बढ़े तो गेट दिखाई दिया । पिछवाड़े का गेट । यहां पर पुलिस का केवल एक सिपाही खड़ा था । भारद्वाज ने कहा, अपने हाथ पतलून की जेब में इस तरह डाल लो जैसे तुम पिस्तौल हाथ में थामे और उसे पतलून की जेब में डाले चल रहे हो । अगर बच गये तो ठीक, नहीं तो कोई और उपाय करेंगे । और हाँ, बड़े आराम से धीरे-धीरे चलो ।

हम लोग टहलते-टहलते पतलून में हाथ डाले गेट पर पहुँच गये। यहाँ पुलिस के सिपाही ने हमें घूर कर देखा। हमने उसे घूर कर देखा। भारद्वाज ने पुलिस के आदमी के सामने पतलून में पड़े हुए हाथ को ज़रा हिलाया। पुलिस का आदमी कांप कर दूसरी ओर देखने लगा। हम लोग बाहिर निकल गये टहलते-टहलते अगले मोड़ तक। यहाँ भारद्वाज ने मुझ से हाथ मिलाया और कहा "अब मैं अकेला चला जाऊंगा।"

मैंने पूछा "अकेले चले जाओगे ?"

वह मुस्कराया। बड़ी विचित्र सी मुस्कराहट थी। वह बोला "मैं सारे रास्ते जानता हूं। अकेला ही जाऊंगा। मुझे पकड़ना कोई आसान काम नहीं है। साथी ! हम तो एक विचार के सहारे उड़ते हैं और उड़ने वाले को पकड़ना आसान नहीं होता।"

वह फिर मुस्कराया। उसने हाथ मिलाया और मोड़ पर ग़ायब हो गया।

× × ×

इसके बाद मैं भारद्वाज से कभी नहीं मिला। इसके बाद मेरे जीवन में कई मोड़ आये। देश की राजनीति ने भी कई रूप बदले। भारद्वाज की पार्टी, जिसका वह सदस्य था, देश की महत्वपूर्ण राजनीतिक पार्टियों में गिनी जाने लगी। फिर मैंने सुना कि भारद्वाज को क्षय रोग हो गया है। ज्वाला ने जला-जला कर अपने आप को राख कर दिया। उसका शरीर शायद उस भड़कती हुई आग की तपिश सहन न कर सकता था जो उसके अंग-अंग में रची हुई थी, जो उसे भारत की चारों खूंटों में घुमाये फिरती थी, जिसने उसे दो-मंज़िला मकान से छलांग लगाने पर विवश कर किया था, जिसने उसे भूखा-

प्यासा दरबदर ठोकरें खाने पर विवश कर दिया था। जिसने उस से अपना घर-बार, मित्र, सम्बंधी तक छुड़ा दिये थे, सारा भारत एक जंगल था और फ़िरंगी साम्राज्यवाद के शिकारी अपनी बन्दूकें उठाये उसकी खोज में उसके पीछे-पीछे भागे-भागे फिरते थे।

भारद्वाज को क्षय हो गया और मैं यही सोच-सोच कर हैरान होता था कि ज्वाला को क्षय कैसे हो सकता है? पारा किस प्रकार शाँत, निश्चेष्ट रह सकता है। बिफरे हुए तूफ़ान के कौन बन्ध बांध सकता है। भारद्वाज क्षय के बिस्तर पर कैसे लेटा है? कभी-कभी मैं यूंही सोचता तो लाजपतराय भवन के मोड़ पर मुझे उसका चेहरा दिखाई दे जाता और उसकी विचित्र सी मुस्कराहट और मुस्करा कर उसका हाथ मिलाना "मैं अकेला चला जाऊंगा—मैं सब रास्ते जानता हूँ।"

× × ×

आज भारद्वाज हममें नहीं है। वह अकेला चला गया है और यद्यपि वह सब रास्ते जानता था परन्तु वह अपने ही रास्ते पर गया है और कोई उसे किसी दूसरे रास्ते पर नहीं चला सका, और कोई उसे क़ैद नहीं कर सका और क्षय रोग भी उसकी जान न ले सका। उसकी मृत्यु की घटनायें सब लोग जानते हैं फिर भी मैं उन्हें यहां दुहराना चाहता हूं; इसलिए कि मेरे लिए ये घटनायें एक विचित्र सा महत्त्व रखती हैं।

पन्द्रह अगस्त की आज़ादी के बाद १९४८ में ४ अप्रैल के दिन राज्य ने उसे गिरफ्तार करना चाहा। भारद्वाज उस समय क्षय के बिस्तर पर रक्त उगल रहा था। उसे १०४ डिगरी का तेज़ ज्वर था। कई वर्षों से वह अपने काम को छोड़ चुका था क्योंकि खांसी ने उसके फेफड़ों को छलनी कर दिया था। दीपक बराबर जल रहा था, लेकिन फ़ानूस के टुकड़े-टुकड़े हो गये थे। यह सच है कि यदि वह मेरी तरह

आराम का जीवन व्यतीत करता, अच्छा खाता, पहिनता, सैर करता, बीवी-बच्चों में रहता तो शायद उसे क्षय न होता। वह इस प्रकार लहू न उगलता। खांसी से उसके फेफड़े छलनी न होते और यह भी सच है कि वह अपने मार्ग से हट जाता। इसी प्रकार मज़दूरों और किसानों के राज्य के स्वप्न न देखता जो वह पन्द्रह अगस्त की आज़ादी से पहले देखता चला आया था। यदि वह भारत के कुछ लाख पूंजीपतियों का ख्याल रखते हुए इस देश के करोड़ों अभागे वासियों की हिमायत का ख्याल न करता तो आज फिर उसे पुलिस इस प्रकार गिरफ्तार करने न आती जिस प्रकार आज से दस वर्ष पूर्व वह उसे लाजपत राय भवन में गिरफ्तार करने आई थी।

परन्तु आज उसके बच निकलने का कोई रास्ता न था। दरवाज़े सब खुले थे और खिड़कियां भी, फिर भी उसके बच निकलने का कोई रास्ता नहीं था। और जब वे लोग उसे गिरफ्तार करने के लिए आये तो वह उठकर बिस्तर पर बैठ गया और यद्यपि उसे १०४ डिगरी का ज्वर था और वह खून उगल रहा था फिर भी वह बिस्तर पर उठकर बैठ गया और कपड़े बदल कर चलने के लिए तय्यार हो गया। और जब वह घर से चला तो उसके चेहरे पर विचित्र सी मुस्कराहट थी। आज मैं उस मुस्कराहट को जान गया हूं, क्योंकि मैंने उसे इससे पूर्व भी देखा है और मैं भारद्वाज की मां से कहना चाहता हूं—मां, चिंता न करो, तेरा बेटा मर गया है लेकिन हमें वह ऐसी मुस्कराहट दे गया है जो कभी नहीं मर सकती, जो कभी नहीं मिट सकती। जो मानव के दुःख की तरह स्थायी है, और तेरी ममता की तरह अमिट है। यह मुस्कराहट हमें आगे का रास्ता दिखाती है—वह रास्ता जो जेलों, क़ैदों और गोलियों की बौछार से गुज़रता हुआ किसानों और मज़दूरों के राज को जाता है।

१९३७ में भी भारद्वाज इसी रास्ते पर चल रहा था कि जब एक प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता देवराज सेठी ने उसे बचाया था और आज भी वह उसी रास्ते पर चल रहा था कि जब कांग्रेसी सरकार ने उसे गिरफ्तार करने का आदेश दिया था। उसका रास्ता वही था। केवल कांग्रेस का रास्ता बदल गया था। भारद्वाज का रास्ता वही था, केवल बेड़ियां बदल गई थीं। पहले फिरंगी की बेड़ियां थीं, आज कांग्रेसी सरकार की बेड़ियां थीं। और वह खून उगलता हुआ, खांसता हुआ, लेकिन मुस्कराता हुआ सीढ़ियां उतर रहा था। नहीं, वह फिर किसी दो मंजिला मकान से कूद रहा था। वह फिर अपने को गिरफ्तार करने वालों की आंखों में धूल झोंक रहा था और उसकी मुस्कराहट कुछ कह रही थी। मैं अब स्पष्ट रूप से जानता हूं कि वह क्या कह रही थी—"मुझे गिरफ्तार करने वाले मित्रो! एक समय तक हमने एक-दूसरे का साथ दिया है, एक-दूसरे के हाथ में हाथ डालकर आज़ादी के कटीली मंजिल की ओर आगे बढ़े हैं। यहां इस छोटी सी फुलवाड़ी में छोटे से बहते हुए चश्मे को देखकर तुम रुक क्यों गये हो और मुझे भी आगे बढ़ने से रोक रहे हो। आज़ादी का स्रोत तो बहुत दूर है और मुझे आगे जाना है और तुम मुझे रोक न सकोगे। मैं अपना रास्ता जानता हूँ। मैं वह रास्ता भी खूब पहचानता हूं जिस पर तुम अब जा रहे हो। यह रास्ता जो शुरू में बड़ा सुन्दर नज़र आता है लेकिन जिसकी सीमायें विनाश, फ़ासिज्म और जन-शत्रुता से जा मिलती हैं। इस रास्ते को छोड़ दो। इस रास्ते को छोड़ दो मित्रो!"

लेकिन मित्रों ने इस रास्ते को नहीं छोड़ा और भारद्वाज को जेल में ले गये, जिसके भवन पर तिरंगा झंडा लहरा रहा था, जिसे ऊँचा करने के लिए भारद्वाज ने अपने जीवन के सर्वोत्तम वर्ष, अपनी जवानी के सुन्दर दिन, अपनी चाँद सी रातें, अपने चिन्तन के सर्वोत्तम क्षण न्यौछावर कर दिये थे।

× × ×

चार दिन के बाद कामरेड भारद्वाज उसी जेल में मर गया। अंतिम क्षणों में उसने अपनी आंखें खोलीं। अपने हाथ की मुट्ठी बन्द की, और उसे ऊँचा करते हुए देश के मजदूर और किसानों और दिन-रात काम करने वाले निर्धनों को नमस्कार किया और मर गया। और मैं सोचता हूँ मैं इस भारत का कैसे विश्वास-पात्र रहूंगा, जिसने उसे इस प्रकार मर जाने दिया। कैसे उन लोगों की इज्जत कर सकूंगा जिन्होंने उसे मृत्यु शय्या से उठाकर जेल की सलाखों के अन्दर बन्द कर दिया। कैसे उनके गुण गाऊँगा जिन्होंने उसकी शव के ऊपर तिरंगा झंडा लहराया। यह भारत तो मेरा नहीं है। यह भारत तो भारद्वाज के स्वप्नों का भारत नहीं है। यह भारत तो उन लाखों अन-जाने अज्ञात सिपाहियों का नहीं है जिन्होंने हंसते-खेलते स्वतंत्रता के लिए अपनी गरदनें कटवाई हैं। मैं सोचता हूं तो फिर मैं क्यों न उस मुस्कराहट का विश्वास-पात्र बनूँ जो मरते हुए भारद्वाज के होठों पर खेल रही है, जो अभी मानवता की एक कोमल सी कली है। एक नन्हा सा गीत है, एक कोमल सी लहर है, लेकिन जो एक दिन फूल की तरह खिल जायेगी, संगीत की तरह गूंजेगी, और समुद्र बनकर चारों ओर फैल जायेगी।

: ४ :

फूल सुर्ख हैं

मैं प्राय: उसे अपनी मिल के बड़े गेट के सामने चक्कर लगाते हुए देखा करता था। उसकी आयु बारह-तेरह वर्ष के लग-भग होगी। दुबला-पतला साँवले रंग का लड़का था वह। मुंह पर शीतला के दाग़ थे। वह प्रतिदिन हमारी मिल के बड़े गेट के सामने चक्कर लगाया करता था। प्रातः जब हाज़िरी होती, दोपहर को जब खाने के लिये छुट्टी मिलती, शाम को जब हम मिल से निकल कर घर जाते, मैं उसे प्रतिदिन देखता था। यह मिल में नौकरी करने के लिये नहीं आता था, क्योंकि वह दोनों आंखों से अन्धा था और हमारे देश में तो अभी आँखों वालों ही को काम नहीं मिलता, अन्धों को क्या मिलेगा। अंधों के लिए अभी भीख मांगना ही लिखा है।

परन्तु यह अंधा लड़का बड़ा होशियार था। मैंने उसे कभी भीख मांगते नहीं देखा। उसकी आवाज बड़ी बारीक, मधुर और प्रिय थी। वह सदैव अपने दांये हाथ में फ़िल्मी गीतों और कहानियों का बंडल लिए हुए आता और नये-नये फ़िल्मी गीत गाता हुआ हमारी मिल के सामने चक्कर लगा कर फ़िल्मी गीतों और कहानियों की पुस्तकें एक-एक आने में बेचता और हम में से कई एक इस अंधे लड़के से ये पुस्तकें खरीद लेते थे। मुझे फ़िल्में देखने का बहुत शौक़ है। सभी को होता है। एक तो यहाँ मिल में सुबह से शाम तक इतना सख्त काम होता है कि सारा शरीर दुखने लगता है और फिर 'इतने परिश्रम के

बाद जो पैसे मिलते हैं इसमें किसी तरह भी घर का खर्चा ठीक ढङ्ग से नहीं चल सकता। आदमी न खा सके, न पहिन सके, न सुख से रह सके और दिन भर मजूरी करता रहे तो शाम को ताड़ी पीने या फ़िल्म देखने को जी न चाहेगा तो क्या चाहेगा। मैं ताड़ी तो कभी नहीं पीता, हां फिल्म अवश्य देखता हूँ, जिसमें नाच होते हैं, और गाने होते हैं, और अच्छे-अच्छे सुन्दर घर होते हैं और स्त्रियां और पुरुष बड़े सुन्दर वस्त्र पहिने मोटरों में घूमते हैं, और एक दूसरे से प्रेम करते हैं। मैंने देखा है कि फ़िल्मों में हर व्यक्ति हर समय प्रेम करता रहता है। जिसे देखो प्रेम कर रहा है, या करने जा रहा है, या करके मरने जा रहा है। न जाने ये लोग काम किस समय करते हैं। कभी मिल में जाते हैं, या नहीं? इतना महंगा कपड़ा होने पर इतने सुन्दर वस्त्र कहाँ से पहिन लेते हैं? इनके पास इतना पैसा कहाँ से आता है कि इस शान से रह सकें। हम लोग तो सात जन्म भी परिश्रम करते रहें तो भी इतना पैसा न मिले; और फिर फ़िल्मों में एक विचित्र बात मैंने यह देखी है कि जो धनवान है वह निर्धन से प्रेम कर रहा है। जो मिल मालिक का बेटा है वह मजदूर की बेटी से प्रेम कर रहा है और जो मजदूर का बेटा है वह मिल मालिक की लड़की से प्रेम कर रहा हैं और लड़की है कि सिर झुकाये प्रेमी के क़दमों में गिरी जा रही है। और अन्त में मिल मालिक स्वयं सब कुछ त्याग कर मजदूरों का भला चाहने लगते हैं। भई, ऐसे मिल मालिक और उनकी ऐसी लड़कियों का किसी को पता मालूम हो तो हमें बताइये। हम तो इसी बात के लिए तरसते रह गये कि मिल मालिक तो क्या मिल का फ़ोरमैन ही हम से सीधी तरह बात कर ले। लेकिन साहब फिर भी फ़िल्म में समय अच्छी तरह कट जाता है, और वह भी चार आने में। लेकिन सिनेमा भी तो रोज-रोज नहीं देखा जाता। कई बार तो नई-नई फ़िल्में आती हैं और आ कर चली जाती हैं, और हम नहीं देख सकते, चवन्नी भी तो पास नहीं होती। इस अवसर पर हम इस अंधे लड़के से पुस्तक खरीद लेते

लगीं और गीत न गुनगुनाये जाते थे, न पढ़े जाते थे। कभी-कभी सोचता कि वह फिल्मी कारखाने वाले की लौंडिया, जो मज़दूर से प्रेम करती है, इस समय कहीं से मिल जाये तो मज़ा आजाये; परन्तु यह बात जीवन में कहां? मिल-मालिक की लड़की नीले रंग की एक मोटर में कभी-कभी मिल में आती थी। वह मोटर में आती थी और मोटर में जाती थी और उसने हमारी ओर कभी आंख उठा कर भी नहीं देखा कि हम इतना ही कह सकते—"मिल के बिछुड़ गई अखियां।"

तो जब कोई सहारा न रहा और लाल झंडे तले खड़े होकर मज़दूरों ने हड़ताल करने की सौगंध ली तो मैं भी पहली बार उनमें शामिल हो गया। हड़ताल करना कोई आसान काम नहीं है। जो आदमी दिन-रात परिश्रम करने का अभ्यस्त हो उसके लिए चार दिन भी बेकार रहना कठिन है। अपनी मशीन की हत्थियां और चर्खियां बार-बार आंखों के सामने घूमती हैं। फिर पैसे भी तो नहीं होते। अपना ही पेट काट कर हड़ताल करनी पड़ती है। कोई बैंक में तो रुपया होता नहीं कि आदमी निकलवाता चला जाये और घर में बैठ कर आराम से खाता जाय—जैसे हमारे मिल-मालिक कर सकते हैं। सभी कहते हैं कि मज़दूर हड़ताल न करें, काम अधिक करें और परिश्रम अधिक करें और कपड़ा अधिक बुनें। हमें यह सब स्वीकार है। हम काम भी अधिक करते हैं, कपड़ा भी अधिक बुनते हैं, लेकिन बाज़ार में कपड़े का भाव बढ़ता जाता है। मिल मालिक का पेट फूलता जाता है और हमारी रोज़ी कम होती जाती है। भय्या मेरे! किसी से कहो, इधर भी तो ध्यान दे। पहले हम चवन्नी का सिनेमा देखते थे अब वह भी न रहा तो क्या करें?

खैर जी, जब हड़ताल हुई और बड़े धूम धड़क्के से हुई और कोई मज़दूर मिल में नहीं गया, सिवाय आठ-दस पिट्ठुओं के, तो हम लोगों

ने बड़ी खुशी मनाई। पुलिस का पहरा लग गया, लेकिन हम लोग मिल के बाहर टोलियों में खड़े बड़े सन्तोष से बातें करते रहे। उस दिन भी अंधा लड़का मिल के सामने घूम-घूम कर गाता रहा लेकिन आज किसी ने उस से एक भी पुस्तक नहीं ली। उस ने अपनी बारीक, मधुर और प्यारी आवाज़ का सारा ज़ोर लगा दिया। लेकिन किसी मज़दूर ने एक आना भी जेब से न निकाला, क्योंकि भय्या! अब हम लोग हड़ताल पर थे और जाने यह हड़ताल कै दिन रहे और एक आना एक आना होता है। सुबह और शाम के चने चल सकते हैं। मुझे हँसी आती है, जब कभी लोग यह कहते हैं कि मज़दूर यों ही लोगों के बहकाने से आवेश में आकर हड़ताल करते हैं। उन्हें क्या मालूम कि मज़दूर मुर्ग़ और पलाव खा कर हड़ताल नहीं करते। वे चने खा कर और मुट्ठियां भींच कर और अपने दिल का लहू खुश्क करके हड़ताल करते हैं। वे अपने बच्चों को फ़ाके से मरता हुआ देखते हैं। अपनी पत्नियों को पानी में घास उबालते हुए देखते हैं और दृष्टि नीची करके और दाँत पीस कर मिल के दरवाज़े पर जा खड़े होते हैं और भीतर नहीं जाते। कई निर्बलतायें, कई सौ प्रकार के लालच, और छल उन्हें धकेल-धकेल कर भीतर भेजना चाहते हैं, फिर भी वे भीतर नहीं जाते। मैं तुम से सच कहता हूँ, गोली खाना आसान है, हड़ताल करना आसान नहीं।

हां, तो जब हड़ताल के पहले दिन अंधा लड़का गाते-गाते थक गया तो सामने के पुल के पास डाक डालने के बम्बे का सहारा लेकर खड़ा हो गया। मैं देख सकता था कि वह बिल्कुल रोवाँसा हो रहा है। हमारी तरह वह भी कम परेशान न था, शायद सुबह से उस ने कुछ नहीं खाया था। मैं टहलता-टहलता उसके पास चला गया।

मैंने पूछा "आज कितनी पुस्तकें बिकीं?"

"एक भी नहीं।"

मैंने कहा "अब यहाँ नहीं बिकेंगी।"

"क्यों ?"

"यहाँ हड़ताल हो गई है।"

"हड़ताल क्या होती है ?"

"मज़दूर काम पर नहीं जाते।"

"क्यों नहीं जाते, क्या वे बीमार हैं।"

"बीमार नहीं हैं, लेकिन एक तरह से बीमार ही समझो। अगर घर में चैन न होगा, शरीर पर कपड़ा न होगा, पेट में रोटी न होगी तो आदमी काम कैसे कर सकेगा ?"

वह अपने सूखे ओठों पर जिह्वा फेरते हुए बोला "आज एक पुस्तक भी नहीं बिकी।"

"आज हड़ताल है" मैंने कहा।

"और उस दिन भी एक पुस्तक नहीं बिकी थी, जिस दिन कहते हैं आज़ादी आई थी, पन्द्रह अगस्त! सब लोग खुशी से नाच रहे थे।"

"तुम क्यों नहीं नाचे ?"

"मैं भूखा था।"

मैं चुप हो रहा, थोड़ी देर बाद मैंने जेब से एक आना निकाल कर उसे दिया। उसने नहीं लिया, बोला :—

"मैं अंधा हूं, भिखारी नहीं हूं। मेरा बाप भी इसी मिल में नौकर था। वह ऐक्सीडैंट में मारा गया था।"

"क्या हुआ था ?"

"फोरमैन की गलती से मशीन में कुचला गया। बाद में पता चला कि गलती उस की अपनी थी।

मैं ने कहा "तुम यह एक आना लेलो"।

वह बोला "नहीं, मैं भीख नहीं मांगूंगा" उस के ओठ ज़ोर से भीतर को भिच गये।

मैं उस के पास से चला आया।

हड़ताल के दूसरे दिन, तीसरे दिन, चौथे दिन मैं उसे बराबर आते देखता रहा, वह हाथ में पुस्तकें लिए गाता रहा, किसी ने उस से पुस्तक नहीं ली। वह जब गा-गा कर थक गया तो डाकखाने के खम्बे के पास सहारा ले कर खड़ा हो गया।

मैंने उससे कहा "आजकल यहाँ हड़ताल है। किस को फ़िल्म के गानों में दिलचस्पी होगी? तुम कहीं और जाओ।"

वह बोला "कहाँ जाऊँ? मुझे रास्ते नहीं आते।"

मैंने कहा "फ़ोर्ट जाओ, वह शरीफ़ों और मालदारों की बस्ती है। वहाँ तुम्हारी पुस्तकें बहुत बिकेंगी। आओ मैं तुम्हें स्वयं वहाँ पहुँचा आता हूँ।"

मैं उसे फ़ोर्ट में पहुँचा आया।

लेकिन दूसरे दिन वह फिर वापस चला आया। मिल के सामने बोला "वे लोग अंग्रेज़ी फ़िल्में देखते हैं। देसी फ़िल्मों के गाने रेडियो पर सुन लेते हैं। वे लोग मेरी पुस्तक नहीं लेते"

इतने में लाल झंडे वाले आ गये। उनके साथ दूसरी मिलों के मज़दूर भी थे। हम सब लोग मिल के दरवाज़े के सामने खड़े होकर नारे लगाते रहे, और फिर क्रान्ति के गीत गाने लगे। गाते-गाते मैंने देखा कि वह अंधा लड़का भी डाकखाने के खम्बे से चलकर हमारे समूह में आ गया है। और धीरे-धीरे हमारा गीत गाने का प्रयत्न कर रहा है। गाते-गाते जब उसकी धुन उसे अच्छी तरह याद हो गई तो वह सब से ऊँचे स्वर में गाने लगा और हम सब उसके पीछे दुहराने लगे। उसकी आवाज़ बड़ी मधुर और सुरीली थी। बड़ा आनन्द रहा। जब गीत समाप्त हो गया तो हम सब ने उसे शाबाशी दी। मज़दूरों ने उसे कंधे पर उठा लिया और लाल झंडा उसके हाथ में थमा दिया, और बोले :

"यह चाचा फ़ज़लू का बेटा है। फ़ज़ल उर्रहमान इसी मिल में काम करता था। यह चाचा फ़ज़लू का बेटा है।"

मैंने देखा अंधे का चेहरा प्रसन्नता से चमक रहा था। जब सब चले गये तो उसने काँपते हुए स्वर में मुझ से कहा :—

"यह गीत मुझे बहुत पसंद आया।"

मैंने कहा "यह हमारा सुर्ख गीत है।"

वह बोला "इस झंडे का रंग कैसा है?"

"सुर्ख"

"सुर्ख रंग कैसा होता है?"

मैंने कहा "तुम क्या समझोगे। तुमने कभी सुर्ख रंग देखा ही नहीं। जैसे आदमी का लहू होता है। यह हमारे मज़दूरों की मेहनत का रंग है।"

वह देर तक झंडे पर हाथ फेरता रहा, फिर बोला :

अब मैं इस रंग को नहीं भूलूँगा।"

"कैसे?"

वह हंसा "यह नहीं बताऊंगा।" फिर कुछ देर के बाद कहने लगा "वह गीत बहुत अच्छा था। मेरा जी नहीं चाहता अब ये दूसरे गीत गाने को। तुम्हारे पास कोई ऐसा ही और गीत भी है?"

मैंने इधर-उधर देखा और फिर धीरे से कहा "किसी से कहना नहीं, मैं भी गीत लिखता हूँ। मगर वे बड़े ऐसे होते हैं, मैं किसी को दिखाता नहीं हूं।"

वह बोला "तुम गीत लिखो, मैं गाऊंगा। बस ऐसे ही लाल-लाल गीत लिखना।"

रात मैंने एक भद्दा सा, खुरदरा सा, चपटा-चपटा सा गीत लिखा। बड़ी मुश्किल से लिखा, मगर दिल से लिखा। इस गीत में मैंने अपने दिल का सारा दर्द, अपनी पत्नी की सारी विपदा, अपने बच्चे की सारी की सारी भूख डाल दी और फिर मैं यह नंगा-प्यासा भूखा गीत लेकर

अपने अन्धे मित्र के पास गया और उसने अपनी अंधी आत्मा की सारी ज्योति और अपने अंधकारमय संसार की सारी घुटन और अपने अंधकार का सारा प्रकाश उसमें डाल दिया, और गीत एक तलवार बन गया। और जब अंधे लड़के ने उसे गाया तो हजूम जैसे सोते से जाग उठा और जैसे हज़ारों तलवारें नंगी होकर मिल के दरवाज़े पर नृत्य करने लगीं और रक्षकों के मुंह फक़ होते गये और हम लोग बढ़ते-बढ़ते बिल्कुल मिल के दरवाज़े पर आ गये; और मैनेजर ने फौज के बुलाने के लिए टैलीफ़ोन किया।

ख़ैर हम लोग वापस चले गये।

इसी प्रकार कई दिन व्यतीत हो गये। हमारी आशायें टूटती जा रही थीं और बहुत से मज़दूर काम पर वापस जाने की सोच रहे थे क्योंकि मिल-मालिक उसी प्रकार अपनी हट पर अड़ा हुआ था; और जो लोग बीच में समझौता कराने आये थे वे भी हमें डांटते थे। और समाचारपत्र भी बड़े व्यक्तियों के थे, वे भी हमें डांटते थे। और हमारी कोई सहायता नहीं करता था, उपदेश सब देते थे। इसी परेशानी में दिन निकलते जा रहे थे और कोई फैसला न होता था, और आज बहुत से मज़दूरों ने निश्चय कर लिया कि वे कल से काम पर चले जायेंगे। हमारे समझाने पर भी वे लोग नहीं माने।

मैं बहुत उदास था। मेरा अंधा मित्र भी बहुत उदास था, हम लोग धीरे-धीरे मिल से चले। वह बोला :—

"कल से मज़दूर काम पर जायेंगे।"

"हां" मैंने दबे स्वर में कहा।

"तुम भी जाओगे ?" उसने पूछा।

"नहीं"

"तो फिर क्या करोगे ?"

मैं चुप हो रहा।

वह बोला "उन्होंने सुर्ख झण्डा मेरे हाथ में दिया था।"

मैं फिर चुप रहा।

वह बोला "कल के लिए कोई गीत लिखोगे ? कोई बहुत अच्छा सा गीत।"

मैं फिर भी चुप रहा।

हम फूलों की एक दुकान के सामने से निकल रहे थे। वह चुप-चाप खड़ा हो गया। देर तक खड़ा रहा। फिर बोलाः—

"ये फूल मुझे बहुत पसंद हैं। इनकी सुगन्ध कितनी भीनी-भीनी और प्यारी होती है ! जी चाहता है कोई मुझे बहुत से फूल दे दे। ढेर के ढेर।"

मैंने कहा "मेरी जेब में दो पैसे हैं।"

वह बोला "आगे चलो, चने खायेंगे।"

× × ×

दूसरे दिन हम दोनों प्रातःकाल ही मिल के दरवाज़े पर पहुँच गये। उसके हाथ में झंडा था और ओठों पर मेरा नया गीत। इससे अच्छा गीत मैंने आज तक नहीं लिखा था। इससे अच्छा गीत उसने आज तक नहीं गाया था। जैसे यह गीत हम दोनों की अन्तिम कोशिश था। जैसे चारों ओर अन्धकार फैल जाये और प्रकाश की अन्तिम किरण बुझने से इनकार कर दे। जैसे दिन-रात का परिश्रम संगीत की नदी बन जाय और कोई उसे पार न कर सके। जैसे रोज़-रोज़ के फ़ाक़े ईंटें चुन-चुन कर मिल के दरवाज़े पर दीवार खड़ी कर दें और भीतर जाने वालों का रास्ता रोक दें। कोई भीतर नहीं गया। जो भी आया संगीत के सागर में मिलता चला गया। मिल के दरवाज़े खुले थे लेकिन कोई भीतर नहीं गया। फिर काम बिगड़ता देख कर मिल मालिक के पिट्ठुओं ने हम पर आक्रमण कर दिया और हमने आक्रमण

का उत्तर दिया। और गोली चली और भगदड़-सी मच गई और मैंने अंधे लड़के को गिरते हुए देखा और उसके हाथ से एक अन्य मज़दूर को झंडा उठाते हुए देखा, और मैंने भाग कर अंधे लड़के को अपनी बाहों में उठा लिया और उसे भीड़ से निकाल कर बाहर ले आया और हस्पताल की ओर भागने लगा।

हस्पताल में उसकी खाट के गिर्द बहुत से मज़दूर एकत्रित थे, क्योंकि डाक्टर ने कह दिया था कि वह बच नहीं सकता, एक-आध घंटे का मेहमान है।

वह बोला "मिल के भीतर तो कोई नहीं गया?"

मैंने कहा "नहीं।"

"कोई नहीं?"

"एक भी नहीं।"

उसने संतोष का श्वास लिया। धीरे से बोला:

"उन्होंने झंडा मेरे हाथ में दिया था।"

मेरी आंखों में आंसू आ गये। नर्स उसका सिर थपकने लगी। अंधे लड़के के नथने हिलने लगे, बोला:

"कितनी अच्छी सुगन्धि आ रही है, किसके पास फूल हैं?"

नर्स ने लवैंडर लगा रखा था। वह कुछ कहना चाहती थी। मैंने उसे रोक दिया और एक साथी के कान में तुरन्त फूल लाने को कहा। वह जल्दी से बाहर भाग गया।

"किसके पास फूल हैं?" उसने फिर पूछा।

मैंने कहा "फूल बाहर दुकान पर हैं। मैंने मंगवाये हैं, तुम्हारे लिए।"

वह चुप हो रहा। साथी ने चम्बेली के फूलों का एक बड़ा गुच्छा

ला कर मेरे हाथों में दिया और मैंने उसे अपने अंधे मित्र के काँपते हुए हाथों में थमा दिया।

चम्बेली के चमकते हुए श्वेत-श्वेत फूल उसके निर्बल हाथों में थे।

वह बोला "कितने अच्छे फूल हैं ये। इनकी भीनी-भीनी सुगन्ध, इनका रंग!"

वह चम्बेली की कोमल-कोमल पत्तियों पर हाथ फेरने लगा। एकाएक उसका चेहरा प्रसन्नता से चमक उठा।

बोला "सुर्ख फूल हैं ना ये? सुर्ख! सुर्ख!!"

नर्स कुछ कहना चाहती थी, मैंने उसे रोक दिया और रुंधे हुए कण्ठ से बोला:

"हां छोटे भय्या! इनका रंग बिल्कुल सुर्ख है, बिल्कुल सुर्ख है।"

उसने फिर पूछा "इतना सुर्ख जितना हमारा झंडा? जितना आदमी के दिल का लहू?"

"हां" मैंने कठिनता से अपने आंसू पीते हुए कहा:

"हां छोटे भय्या, ये फूल बिल्कुल सुर्ख हैं।"

"बड़े अच्छे फूल हैं ये" वह आनन्द का श्वास लेकर रुक-रुक कर बोला "बड़े अच्छे फूल हैं ये। ये सुर्ख-सुर्ख फूल......मेरा जी चाहता है मैं इन सुर्ख-सुर्ख फूलों में छुप जाऊँ।"

फूल उसने अपने गाल से लगाये और आंखें बन्द कर लीं—सदैव के लिए।

वार्ड में किसी ने सिसकी भरी। किसी की आंख से एक आंसू ढलका, कोई मुँह छुपा कर रोने लगा।

× × ×

वह आज हममें नहीं है। मैं आज उसकी क़ब्र पर से होकर आया हूं। उसकी क़ब्र कच्ची है और वीरान है और उस पर कोई फूल नहीं है और आज, जब मैं उसकी क़ब्र देखने गया था, तो उसने मुझसे पूछा :

"भय्या! ये सुर्ख-सुर्ख फूल मेरी क़ब्र पर कब खिलेंगे?"

और मैंने कहा "छोटे भय्या! आज एक जगह मैं तुम्हारी कहानी सुनाने जा रहा हूँ। उनसे यह प्रश्न ज़रूर पूछूंगा।"

: ५ :

एक दिन

बहुत ही सुन्दर दिन था। अभी पौ न फटी थी और आकाश पर क्षितिज के चारों ओर किनारे-किनारे पर्वतों की स्याह नुकीली चोटियों के ऊपर बदलियों के लच्छे उलझे हुए थे। पश्चिम में बदलियों की लहरें गहरी होती-होती एक ठेस गुबार बन गई थीं; और पर्वतों की कंवारी चोटियां इस स्याह गुबार में यों उभरी हुई थीं जैसे स्याह अंगिया में यौवन के कमल। और फिर बादलों के स्याह लच्छे इस गुबार के उत्तर-पूर्वी कोने से उठते हुए दूर पूर्व तक फैलते गये थे। फैलते गए और लचकीले और चमकीले होते गये; और सूर्य के उद्गम के पास जाकर बिल्कुल अदृश्य हो गये। इस उद्गम के पास आकाश इतना स्वच्छ था कि सूर्य पर दीपक की लौ का भ्रम होता था। दीपक बिस्तर के किनारे जल रहा था और रात अपने केश फैलाये अभी तक सो रही थी और दीपक का उजाला बढ़ता जा रहा था। पहले तो चोटियों के शबनमी ओठ बादलों से अलग हुए। कैसी विवशता थी उनमें, जैसे वे ओठ उस दीर्घ चुम्बन से प्रथक् न होना चाहते हों। फिर एक श्वेत-सुनहला प्रकाश उद्गम से उबल कर आकाश के चेहरे पर फैल गया। जैसे रात सोते में मुस्करा उठे। कितनी हल्की, कोमल सी मुस्कान थी वह। फिर कहीं से एक पक्षी चहचहाया कू, कू, कू, कू। कुकू था और मीठे, दूमधम निद्रित स्वर में बोल रहा था—कू कू, कू कू। जैसे सोया हुआ बच्चा जागते समय कुनमनाये। कू, कू!

बगलों की डार खुली कैंची के रूप में उड़ाने भरती गई चुप-चाप गुज़र गई। फिर एक दम बहुत से पक्षी चहचहा उठे। एक कव्वा चीख़ा, एक गुलदुम गाई, एक तीतर बोला, एक खटबढ़ई ने ताल दी और फिर चारों ओर पक्षियों की चहचहाहट ही सुनाई देने लगी और रात के केशों को दीपक की लौ ने छू लिया और केश फिसलते-फिसलते बिल्कुल पश्चिम में चले गये और फिर एक दम उजाला हो गया।

लेकिन यह सूर्य का उजाला न था। सूर्य के आगमन से पहले का प्रकाश था। जब रात जागती है और प्रातः, हौले-हौले पगों से पलंग के पास आ जाती है और लजाई हुई दृष्टि से सोए हुए दिन को देखती है। उसकी बड़ी-बड़ी स्याह आंखें सारे आकाश पर थी, और सारी धरती पर थीं, और उसकी मदमाती मुस्कान सारे विश्व पर थी, और अब आकाश कांच की तरह कोमल, नीला और निर्मल था और उजाले में ऐसा कम्पन था मानो यह कांच अब गिरा कि अब गिरा; और धरती छन्न की सी आवाज़ की प्रतीक्षा में थी। कांच का स्तर इतना कोमल था कि भय था कहीं उड़ते हुए बगलों और कव्वों और गुटारियों की तेज़ नोकीली चोंचें उस में छिद्र न कर दें और कहीं यह उजाला छिद्रों से बह कर समाप्त न हो जाये। फिर जैसे यह कांच और ऊपर उठ गया और वसंत की रेखा पहाड़ों की चोटियों के ऊपर-ऊपर चारों ओर फैल गई। और उस श्वेत उजाले में किसी ने केसर की हवाई बिखेर दी; और यह हवाई लहराती हुई, बल खाती हुई, अपने आप को उस उजाले में घोलती हुई क्षितिज के किनारे-किनारे चारों ओर फैल गई।

गांव अभी सो रहा था। चश्मे का पानी एक ही गति से बह रहा था। लकड़ी के नल से लेकर पत्थर की शिला तक पानी की एक रेखा सी खिंची हुई थी। झाड़ियों पर धुंध छाई हुई थी। वृक्ष धुंध में लिपटे हुए थे। उन के तनों पर ओस की बूंदें धीरे-धीरे सरक-सरक कर एक दूसरे में विलीन होती हुई नीचे बहती जा रही थीं और मार्ग

के नीले पत्थर उन के पानियों से धुल गये; और पशुओं के कदमों से दबी हुई धूल सेराब हो गई और दिन भर के परिश्रम की प्रतीक्षा करने लगी। सारी धरती सुख का सांस ले रही थी और यह सांस एक उजले-उजले धूंए के रूप में वातावरण पर छाया हुआ था।

घर सो रहा था। घर के पीछे चीड़ के वृक्ष पर घास का गाढ़ा रचा हुआ था; और उस के नीचे पशुओं के बाँधने का कोठा था। कहीं कोई आवाज़ न थी। बाहर दालान में दादी कम्बल ओढ़े सो रही थीं। जब चीड़ के वृक्ष पर रतगला चहचहाया और घर के सामने आडू के पेड़ पर खटबढ़ई ने खटखट शुरू की तो दादी ने करवट बदल कर खांसना शुरू कर दिया: —

"बखतियार! बखतियार बेटा, फजर (सुबह) हो गई।"

"ऊहं" कोई दूर अपनी चारपाई पर सरका। फिर खर्राटे भरने लगा।

"कैसी ज़ालिम नींद है। पशु हांडी में भूखे मरे जा रहे हैं और ये सब लोग सो रहे हैं। अरे बखतियार! बखतियार बेटा! फज़र हो गई।"

"बॉ" कोई दूर बिस्तर पर डकारा।

"बेगमां, बेगमां तू ही उठजा।"

"आंयें, ईं, ऊं" बेगमां अपने गरम-गरम बिस्तर में कुसमसाई और उस ने अपने दूध पीते बच्चे को छाती से लगा लिया। बच्चा मज़े से दूध पीने लगा और बेगमां को और भी गहरी नींद आ गई।

"मिरजानी बेटी! ओ फ़िकरू, अरे कोई तो उठे।"

मिरजानी का सिर खुला था। उसका मुँह भी खुला था और उसकी कमीज़ भी इतनी खुली थी कि गर्दन के नीचे ऊँची घाटियों के बीच की गहराई अपनी आश्चर्य-जनक सफेदी, कोमलता और कांच की सी सुन्दरता लिये नज़र आ रही थी। जैसे आकाश पर उजाला था, ऐसा

ही उजाला मिरजानी ने अपनी कमीज़ के भीतर छुपा रखा था और उस के हाथ भी बेधड़क खुले पड़े थे और वह अपना सौंदर्य, अपना यौवन और अपने अल्हड़पन से बेख़बर सो रही थी। दादी अम्मा देर तक उसे घूरती रहीं और फिर उन्होंने क्रोध से उसे एक लात जमाई और मिरजानी हड़बड़ा कर उठ बैठी।

"क्या है, क्या है?"

"कैसी बेखबर सोती है, पिंडा भी नहीं छुपा सकती कमजात।"

"तो मैं क्या करूँ दादी अम्मां?" मिरजानी ने अपनी छाती पर कमीज़ के फटे हुए कोनों पर हाथ रखते हुए कहा।

"चल उठ मटकी धोकर दूध दोह ला।"

मिरजानी लड़खड़ाती सी उठी। उस के हाथ के कंगन बज उठे। उस के बालों में कांच की सुरियां एक दूसरे से टकराईं और उसका संगीत मिरजानी की मुस्कान को चूमता हुआ वातावरण में बिखर गया।

"हाय दादी अम्मा, तुम तो सुबह सवेरे ही जगा देती हो, इतना अच्छा सपना देख रही थी।"

"सपने देखती है, रात को कम खाया कर। चार-छः रोटियां मकई की खा जायेगी और सपने नहीं आयेंगे तो क्या फ़रिश्ते आयेंगे रात को, कम्बख्त!"

मिरजानी ने दालान के थम से ठोकर खाई। फिर संभालते-संभालते भी मटकी उसके हाथ से गिर गई और वह दादी अम्मा की ओर देख कर आँखों में आँसू लाकर कहने लगी "मटकी टूट गई।"

"यह तो मैं भी देख रही हूं। खुदा तुझे किसी जुलाहे से ब्याहे और तू जिन्दगी भर सूत की अंटियां घुमा-घुमा कर मर जाये। तुझे मौत भी नहीं आती, चल वह दूसरी मटकी ले और भाग।"

मिरजानी बुड़बुड़ाती, बकती-झकती, घर के पीछे पशु-गृह की ओर चली गई।

दादी ज़ोर-ज़ोर से खांसने लगी लेकिन कोई नहीं उठा। केवल गोद का बच्चा दादी अम्मा की तेज़ खांसी से डरकर चिल्लाने लगा और बेगमां उसे थपक-थपक कर सुलाने लगी और दादी अम्मा ने चीख़ कर कहा "अब कब तक अपने जिगर के टुकड़े को पुचकार-पुचकार कर सुलायेगी। क्या सूर्य चढ़े घर में आग जलायेगी ? बेगमां ! जब मैं तेरी उम्र की थी तो......"

बेगमां बच्चे को उठाये-उठाये बाहर आई "ओह ! सच-मुच फ़जर हो गई।" उसने हैरान होकर उस उजाले की ओर देखा "अब सूर्य निकला ही चाहता है। बच्चे को ले लो अम्मा, मैं चश्मे से पानी ले आऊं।" उसने घड़ा उठाया और चश्मे की ओर भागी।

"अरी भागती क्यों है, अभी दो महीने तुझे बच्चा जने नहीं हुए, धीरे-धीरे चल।" दादी ने क्रोध से कहा और बेगमां ने हंस कर अपने पग हौले कर दिए। "अल्लाह समझे आजकल की लड़कियों से। अब यह पांचवां बच्चा है इसका, मगर अकल अभी तक नहीं आई। अल्लाह जाने कब आएगी। ऊं ऊं सोजा, मेरे नन्हें बखतियार के नन्हें पूत।"

नन्हा बखतियार, जिसकी आयु उस समय चालीस वर्ष से कुछ कम न होगी, अभी तक चारपाई पर पड़ा खर्राटे ले रहा था। कम्बल का एक सिरा उसके ओठों के पास फड़क रहा था और जब बखतियार श्वास बाहर निकालता तो यह सिरा ऊपर उठ जाता और जब बखतियार श्वास भीतर खैंचता तो यह सिरा उसके ओठों के भीतर घुस जाता। दादी अम्मां देर तक बच्चे को झुलाती हुई अपने बेटे बखतियार को देखती रहीं। बखतियार के चेहरे पर दाढ़ी थी जिस से उसके गालों के गढ़े छुप गए थे। बखतियार की आंखों के कोनों पर झुर्रियों के दायरे बनने शुरू हो गये थे और उसके माथे की रेखायें गहरी होती जा रही थीं, लेकिन दादी अम्मा को

बखतियार उसी तरह एक नन्हा बच्चा नज़र आ रहा था। वही बचपन का भोलापन, लड़कपन की शरारतें, बखतियार की शादी, उसकी बलवान बाहों का सहारा जब दादी अम्मां नाले में गिर पड़ी थीं।

"बच्चे उठ!" दादी अम्मां ने प्यार से कहा।

"ऊँ हूं" बखतियार ने करवट बदल ली।

"अबे उठता है कि नहीं।"

बखतियार ने इस ज़ोर से श्वास खैंचा कि कम्बल का टुकड़ा तालू तक घुस गया और वह 'आख थू' करता हुआ अपनी आंखें मलने गा ।

दादी ने बच्चे को पलंग पर लिटा दिया। और झाड़ू हाथ में लेकर दालान साफ़ करने लगीं। दो मुरगियां कुड़-कुड़ करती हुई दादी अम्मा के निकट आईं। दादी ने क्रोध से झाड़ू दिखाई तो वे 'कुड़ूँ कड़ो' करती हुई बाहर भागीं। मुरग ने उन से कहा, "क्या लेने गई थीं उस बुढ़िया झुलसाऊ के पास। रोकने पर भी उधर ही जाती हो।" मुरग ने बड़ी मुरगी को ठूंगते हुए कहा और बड़ी मुरगी भागी और छोटी मुरगी भागी और मुरग उन दोनों के पीछे भागा और वे भागते-भागते जंगली बेरों के झुंड में जाकर दाना चुगने लगे।

बच्चा रोने लगा, अभी अंगूठा चूस रहा था और अभी इस तरह दाड़ें मार-मार कर रोने लगा जैसे उस पर विपत्तियों के पहाड़ टूट पड़े हों। फ़िकरू की निद्रा भङ्ग हो गई।

"दादी अम्मा, इसे चुप कराओ।"

"नहीं तुम पड़े-पड़े सोते रहो, जब दिन निकलेगा तब उठना। कैसे किसान हो तुम! कहते हैं दिन भर कमाई करते हैं फिर भी कुछ नहीं मिलता। अरे मिले कैसे? अल्लाह जाग गया, सूर्य निकलने को आया मगर तुम्हारी नींद है कि ख़त्म होने का नाम ही नहीं लेती।

ऐसी हराम की कमाई में खुदा कैसे बरकत दे ? खुदा बख्शे, जब बखतियार का बाप जिन्दा था तो तीसरे पहर मुरग की पहली बांग के साथ उठ जाता था और हल लेकर खेतों में चला जाता था। धान के मौसम में भी घुटने-घुटने ठंडे शीत पानी में खड़ा पनीरी लगाता रहता; और एक तुम हो, न काम आये न मौत आये।"

फ़िकरू दादी की कड़वी बातें सुनता-सुनता उठ बैठा और जंभाई लेकर निश्चिन्तता से मुस्कराने लगा। यद्यपि उस का नाम फ़िकरू था, लेकिन संसार भर में उसका सा बेफिक्र व्यक्ति कहीं न होगा। उस के माता-पिता बचपन में मर गये थे और उसे दादी अम्मा ने अपने बेटे की तरह पाला था। क़द दर्मियाना, लेकिन शरीर गठा हुआ था। मज़बूत हाथ-पांव और मज़बूत चौड़ी छाती, और मज़बूत जबड़े। वह उस घर का हाली था, और दस किसानों जितना काम करता था; और काम करते-करते गाता भी था, और गाते-गाते नाचने भी लगता, और नाचने के बाद हँसने लगता और हँसते-हँसते फिर काम में मग्न हो जाता।

बखतियार हल उठाये बाहर निकला "सलाम अम्मा" उस ने आदर पूर्वक कहा और एक नज़र फ़िकरू पर डाली।

फ़िकरू ने कहा "तुम चलो, मैं गोडी का सामान लेकर और मवेशियों को चारा खिला कर आता हूँ। जाने आज इतनी देर तक क्यों सोया रहा ?"

"तुम से हज़ार बार कहा है, कम खाया करो, आखिर अपने घर का अनाज है कहीं ख़त्म तो न हो जायेगा। अपने घर की ज़मीन है, उसे कहीं चोर तो नहीं उठा कर ले जायेगा। ऐसे भुखमरे की तरह आठ-दस रोटियां रात को खा जाता है जैसे फिर कभी रोटी न मिलेगी।"

फ़िकरू ने कहा "बहुत भूख लगी है अम्मा !"

"जा जा काम कर।"

फिकरू अपना खुरदरा जबड़ा सहलाता हुआ उठा और उठकर आंगन से बाहर तल्ले में नाशपाती के वृक्ष के नीचे पेशाब करने बैठ गया।

दादी चीखी "अरे तुझ पर अल्लाह को मार! तुझे लाख बार कहा है, फूलदार पेड़ है, वहां मत बैठा कर। उठता है कि मारूं झाड़ू—हर बार, हर रोज़।"

फ़िकरू उसी समय वहां से उठा और आगे सुबंलू की झाड़ियों के सामने बैठ गया। पेशाब करके हँसता हुआ उठा तो बाहर मटके से पानी लेकर हाथ धोने लगा "अम्मा, कुछ टुक्कड़ (रोटी का टुकड़ा) दे दे। तेरे सिर की क़सम बड़ी भूख लग रही है।"

"बेगमां अभी चश्मे से पानी लाती होगी, आने दो, फिर टुक्कड़ और लस्सी देती हूं। जा तब तक काम कर। बेचारी मिरजानी अकेली सब ढोरों को कैसे संभालेगी।"

बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था। बेगमा घड़ा उठाये सामने से चली आ रही थी। पांच बच्चों की माँ होने के बाद भी चाल में यौवन की शान थी और कमर में हिरनी का वहशीपन था, और गालों में गाज़े के बिना भी सुर्खी थी, और काजल के बिना भी आँखें बड़ी-बड़ी और स्याह थीं; और छाती पहाड़ की चोटियों की तरह उभरी-उभरी। बच्चों को रोते देख कर वह ओठ कटकटाने लगी। घड़े का पानी छलक कर केशों से होता हुआ गालों पर आ गया था और उस के गाल क्रोध से चमक रहे थे; और उसका श्वास तेज़-तेज़ चल रहा था। बच्चा ज़ोर-ज़ोर से रो रहा था, अकेला, खाट पर, और दादी अम्मां भीतर दूसरे बच्चों को जगा रही थीं। खटिया उठा रही थीं। बच्चे चिल्ला रहे थे, रो रहे थे और हँस रहे थे; और दादी अम्मां के गिर्द घूम रहे थे। और मुर्ग कुड़कुड़ा रहे थे, और बकरियां मिनमिना रही थीं, और पशु-गृह

में गायें डकरा रही थीं। बेगमां ने आते ही घड़ा सिर से उतारा और रोते हुये बच्चे को जल्दी से उठा कर छाती से लगा लिया। बच्चे दादी अम्मां के गिर्द नाचते हुए बाहर आ गये। बेगमां ने लाल भभूका होकर दादी अम्मां की ओर देखा।

"बच्चा अकेला पड़ा था।"

"हां" दादी फुफकारी।

"खाट पर पड़ा था, रो रहा था अकेला।"

"सुन लिया" दादी चीखीं।

"अगर इसे कोई उठा ले जाता तो?"

"हां भगियाड़ (भेड़िया) आ रहा था इसे उठाने के लिये यहां।"

"हाये, इसे भगियाड़ क्यों ले जाये। भगियाड़ ले जाये तेरे जैसे बूढ़े खखियाड़ को" बेगमां ने झल्ला कर कहा।

दादी चिल्लाईं "मैं बूढ़ी हूँ, खखियाड़ हूँ। तू बड़ी जवान है। पांच बच्चों की मां है और अभी तक सोलह वर्ष की कुंवारी की तरह मटक-मटक कर चलती हैं, और दीदे घुमा-घुमा कर यों चारों तरफ़ तकती है जैसे सारा गाँव तुझी पर मरता है। उस दिन जाफ़र अली से क्या बातें हो रही थीं चश्मे के किनारे?"

"हाय अम्मां! क्या बुहतान लगा रही हो? चचा जाफ़र अली तो तुम्हारी उम्र का है। वह तो मुझ से मेरे बाल-बच्चों का हाल पूछ रहा था। बड़ा मैला दिल है तुम्हारा दादी अम्मां।"

"मेरा दिल मैला है और मैं बुड्ढ, खखियाड़ हूं और तू बड़ी हूरपरी है, नेकज़ात है, तेरे बच्चों को खिलाऊँ, जगाऊँ, तेरे घर को देखूं, दालान में झाड़ू दूं, सब को खाना खिलाऊँ और फिर भी मेरा दिल मैला है।" दादी रोने लगीं।

बेगमां ने आँखों में आंसू लाते हुए कहा "तुम तो यों ही झगड़ती हो अम्मां, मैंने तो बच्चे को रोते देखा तो यों ही कह दिया। मैं चश्में से पानी ला रही थी, यह बाहर रो रहा था।"

"यह बाहर रो रहा था तो मैं कहां मरी जा रही थी, सारे घर को जगाया, झाड़ू दी, अब तेरे बच्चों को जगा जगाकर ला रही थी कि इन मासूम जानों के मुंह में दो टुकड़ दे दूं कि तूने तूफ़ान उठा लिया, ऐसी भी क्या प्रलय आ गई थी ?"

दादी रोने लगीं। बच्चा रोने लगा। दादी ने झट उसे बेगमां से छीन लिया और रोते-रोते उसे लोरी देने लगी। बेगमां के झमकते हुए आंसुओं में मुस्कराहट झलक पड़ी जैसे घूमते हुए भंवर में सूर्य की किरण चमक-चमक जाये।

दादी ने कहा "जा लस्सी बना दे और टुकड़ दे दे सब को।" दादी अम्मां आंगन से निकल कर चीड़ के वृक्ष की ओर चली गईं।

पशु-गृह में अभी अंधकार था और सूखी चरी का कड़वा धुआँ आँखों को लग रहा था। मिरजानी ने पशु-गृह के गरम-गरम वातावरण में शांति का सांस लिया। उस ने मटकी को बड़े ताक में रख दिया और ढोरों का चारा डालने में लग गई। गायों को चारा डाला, फिर बछड़ों को सहलाया, फिर भैंसों को चारा डाला, फिर बकरियों के बाड़े की ओर गई और सिर खुजलाने लगी। एक बकरी का बच्चा उसे बहुत पसंद आया। वह देर तक उसे गोद में उठाये चूमती रही। फिर उसे ख्याल आया कि उसे दूध दुहना है और उसने मटकी ताक में से उठाई और लेले को बकरी के हवाले किया और बल्ली गाय को दुहने के लिये उसके थनों के पास बैठ गई।

दूध की पहली धारा मटकी में गिरी और मटकी प्रसन्नता से गुनगुना उठी।

घुर, घुर, घां, घां, घुर, घुर, घां, घां।

ताज़े दूध की धारायें मटकी में छोटे-छोटे फव्वारों की तरह गिर रही थीं और जब मटकी आधी से अधिक भर गई तो मिरजानी दूध की धाराओं को अपने मुँह की मटकी में डालने लगी और फिर किसी ने उसे अपने बाहुपाश में ले लिया और दूध की धारा उसकी आँखों में जा पड़ी और चेहरे पर फैल गई। उस ने दूध की मटकी ज़ोर से अपनी जांघों में दबा ली और बिना पीछे घूमे कहा "फिकरू छोड़ दो मुझे।"

फ़िकरू ने कहा "हम भी दूध की धारें लेंगे।"

"तो जाओ, इतनी गाय भैंसें खड़ी हैं, शौक से पियो, हमें क्यों परेशान करते हो?"

"नहीं हम तो इसी गाय की धारें लेंगे।"

"तो, लो।"

मिरजानी ने मटकी उठा कर ताक में रख दी और अलग खड़ी हो गई। फ़िकरू भी उसके निकट खड़ा हो गया। दूध की धार अभी तक मिरजानी के बाएं गाल पर बह रही थी। फ़िकरू ने उसके गाल को चूम लिया।

"बहुत मीठा है, आ हा, हा।"

मिरजानी ने उसके मुँह पर एक तमांचा लगाया "गँवार, वहशी।"

बिजली की सी तेज़ी के साथ फ़िकरू ने उसे पकड़ लिया, उसे अपनी बाहों में भींच लिया और अपने ओठ उसके ओठों पर इस ज़ोर से जमा दिये कि मिरजानी का चेहरा पीछे की ओर ठलक गया और उसके बाल पशुगृह के फ़र्श से जा लगे और उसकी गरदन सुराही की तरह झुक गई; और उसकी बाहें सरकती-सरकती निर्जीव सी होकर गिर पड़ीं। फिर एकाएक फ़िकरू ने उसे छोड़ दिया और वह गिरते-गिरते बची।

"मैं—मैं—दादी अम्मां को—अम्मां, बेगमां को—" मिरजानी का श्वास रुक रहा था "बुलाती हूँ—अभी—अभी बुलाती हूं।"

"खुदा के लिए" "फ़िकरू लज्जित होकर बोला "खुदा के लिए।"

"नहीं मैं तो—ऐ दादी"—फ़िकरू ने झट उस के मुँह पर हाथ रख दिया "तुझे ग्यारहवीं वाले पीर की कसम।"

"अच्छा, तो वायदा करो कि फिर कभी नहीं।"

"वायदा करता हूँ कि फिर कभी नहीं।"

"और वायदा करो कि झल्ले पीर के मेले पर मुझे एक हंसली खरीद दोगे।"

"वायदा करता हूँ कि झल्ले पीर के मेले पर खरीद दूंगा।"

"क्या खरीद दूंगा" मिरजानी ने संदेह की नज़रों से उसकी ओर देखते हुए कहा "नाम तो लिया नहीं तुम ने।"

"यही, एक हंसली खरीद दूंगा तुम्हें।"

"हां!" मिरजानी को जैसे संतोष सा हो गया "लो, अब आओ तुम्हें बल्ली गाय की धारें दिलवाती हूं, लेकिन, देखो, एं!" मिरजानी ने उंगली उठा कर कहा "फिर शरारत करोगे तो पिटोगे।"

मिरजानी देर तक बल्ली के थनों से दूध की धारें फ़िकरू के मुंह में डालती रही और फ़िकरू देर तक दूध की धारें मिरजानी के मुँह में डालता रहा। कभी यह, कभी वह, और वे देर तक हंसते रहे और बातें करते रहे। बड़ी देर तक दरवाज़े पर खड़ी दादी अम्मां उन्हें देखती रहीं। लेकिन वे दोनों अपने आप में मग्न थे। उन्हें दादी अम्मां के आने का पता ही न चला। आखिर दादी अम्मा क्रोध से चिल्लाई।

"अल्ला करे तुम्हें मौत आ जाय। मरदूदों, बेशरमों, बेहयाओ, अभी शादी हुई नहीं और पहले ही से—"

दादी अम्मां बकती झकती जा रही थीं लेकिन मिरजानी और फ़िकरू ने केवल एक बार घूम कर देखा और फिर मिरजानी भाग कर उठी और दूर परे पशुगृह के दूसरे सिरे पर जाकर किसी भैंस का दूध दुहने लगी और इस सिरे पर फ़िकरू सिर नीचा किये दूध दुहने लगा; और दादी अम्मां बकती-झकती रहीं। लेकिन उनकी बातों में जैसे अब कटुता न थी, क्रोध न था। उन गालियों में जैसे एकाएक कहीं से मिठास आ गई थी और फिर मौन संगीत जंगली झरने की तरह फूट कर बह निकला और दादी अम्मां की आंखों में आंसू आ गए; और दादी अम्मां अपने पोते को उठाये धीरे से पशुगृह के बाहर घूम गईं; क्योंकि उनकी आंखों में आँसू आ गये थे और जब उन्होंने अपनी आंसुओं-भरी आंखों से आकाश की ओर देखा तो एकाएक झिलमिलाते हुए क्षितिज पर कहीं से सूर्य निकल आया और सारा गांव जाग उठा, और सारी धरती जाग उठी, और सूर्य की कोमल-कोमल दयालु किरणें विश्व के इस कोने से उस कोने तक फैल गईं।

: ६ :

एक गिरजा एक खंदक

उस दिन मेरे मित्र मुझे ज़बर्दस्ती घसीट कर राज होटल ले गये। राज और ब्रीन बम्बई के सबसे बड़े होटल हैं और क्योंकि होटल नई सभ्यता के मन्दिर हैं इसलिए हर शरीफ़ आदमी छः बजे के बाद यहां नज़र आता है। यों तो मैं भी अच्छा खासा 'होटल गर्द' हूं लेकिन राज और ब्रीन में जाना मुझे सदैव विचित्र सा लगता है। कहने को तो ये बम्बई के सबसे बड़े होटल हैं लेकिन जितनी वेश्यायें इन दोनों होटलों में आपको नज़र आती हैं, बम्बई के किसी दूसरे होटल में नज़र न आयेंगी। वेश्यायें और दलाल साथ-साथ मेज़ों पर बैठे हुए आपको मिलेंगे। इस मेज़ पर आप काऊस जी दामनगीर का खानदान देखेंगे तो उनकी बग़ल वाली मेज़ पर आपको वह पौलिश महिला नज़र आयेगी जिसका एक फ्लैट तो कोलाबे में है, और एक झोंपड़ा जूहू तट पर; और जिसकी फ़ीस कोलाबे में पचास रुपये है तो जूहू पर सौ रुपया, और ताज में तीन सौ से पांच सौ तक। एक ओर प्रिंस मुहब्बत जंग शाहज़ादी कर्रोफ़र के साथ विराजमान हैं तो उनके साथ वाली मेज़ पर अमृतसर वाली अलमास बेगम धरी हुई हैं जिन्होंने लट्ठे के फूलदार पेटीकोट पर एक दूधिया बनारसी साड़ी पहिन रखी है। साड़ी से बलाऊज़ तक शरीर नंगा है और बग़लों के पसीने से सुगन्धि की लपटें आ रही हैं। बल्कि प्रायः यह भी होता है कि एक ही मेज़ पर राजे और रानियां और वेश्यायें और उनके दलाल और व्यपारी लोग और

फ़िल्म स्टार नज़र आ जाते हैं; अर्थात् एक ही समय में इतनी दुकानें नज़र आ जाती हैं कि तबीयत मालिश करने लगती है । आदमी सोचता है, हम तो आनन्द लेने आये थे, यहां फिर कम्बख़्तों ने बाज़ार खोल दिया । हर आदमी झपट्टा मारने को बैठा है ।

जो स्त्री है वह रंग और रोग़न से इतनी सुन्दर बनी बैठी है कि उसका स्वाभाविक नारीत्व नष्ट हो गया है । जो पुरुष है वह यों अकड़ा-अकड़ा बैठा है जैसे अभी लांडरी से धुल कर आ रहा है, अर्थात् वह स्वाभाविक सुख-संतोष, ढंग-व्यवहार और सरलता जिन से सभा की शान पैदा होती है, यहां गायब हैं । ऐसा नहीं है कि मुझे वेश्याओं से कोई घृणा है या यहां शरीफ़ लोग नहीं आते, लेकिन साहब ! कोई बात भी तो हो । हर स्त्री ने वही सुर्ख़ी लगा रखी है, वही गाज़ा, वही काजल की लकीर । सारे होटल में घूम जाइये, आपको एक भी ऐसा पुरुष नहीं मिलेगा जिसने दो दिन से शेव न बनाई हो । और बुद्धिमान ऐसे हैं कि वर्षों से मस्तिष्क पर झाड़ियां उगी हुई हैं और कोई उन्हें साफ़ करने की कोशिश नहीं करता । लखनऊ के बहुमूल्य गरारे, पंजाब की स्टाइलिश सलवारें और पारसनों की दूधिया साड़ियां, जो शरीर पर किड लैदर की तरह ऐसी मढ़ी होती हैं जैसे मां के पेट ही से साड़ी बांध कर आई थीं, लेकिन बस, इसके बाद कुछ नहीं । आप किसी विषय पर बात कीजिये (केवल एक विषय को छोड़कर) यदि पारसन होगी तो कहेगी "सूंछे", यू० पी० की होगी तो बड़ी शान से "खूब !" और पंजाबन होगी तो मुस्करा कर कहेगी "हला जी !" और इसके बाद आप सिर पकड़ कर रोइये, चीखिये, चिल्लाइये, कुछ नहीं हो सकता । वे लोग कुछ नहीं करेंगे । पुरुष अकड़े बैठे रहेंगे, स्त्रियां अधिक हंसेंगी नहीं (कहीं चेहरे पर कोई सलवट न पड़ जाये) रोयेंगी भी नहीं, पेस्टरी को अंगूठे और उसके साथ वाली उङ्गली से ऐसे पकड़ेंगी जैसे पेस्टरी का टुकड़ा नहीं केकड़ा खा रही हैं । शैरी का गिलास इस नज़ाकत से उठायेंगी जैसे उसके बोझ से कमर दुहरी

हुई जा रही है; और आप उनके पति से मिलिये तो दो मन की लाश होगी। समझ में नहीं आता कि किस संसार के बासी हैं ये लोग। राजनीति, साहित्य और संस्कृति से तो खैर ये लोग अपरिचित हैं ही परंतु इनके अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर भी (केवल एक को छोड़कर) इनके मस्तिष्क में बिजली की रौ नही दौड़ती, कनैक्शन नहीं होता। ये लोग अमरीकी और अंग्रेज़ी टाई का फ़र्क नहीं जानते। जटरबग और जटररम्बा का भेद नहीं जान सकते, एल० जानसन और सीनातरा के गाने का फ़र्क मालूम नहीं। शग़ान और जापानी नकली रेशम की पहचान नहीं। यह भी नहीं जानते कि रेशम का कपड़ा रेशम के कोए से तय्यार होता है या घोड़े के मुंह से निकलता है। पुरुष हैं कि अपनी पत्नी का नाम भी नहीं बता सकते, और स्त्रियां हैं कि अपने बच्चों की संख्या बताने से लाचार हैं। हां बुराई आप जिसकी भी चाहें सुन लीजिये।

"हर-मैजस्टी घोड़ी बहुत अच्छी है" आपने कहा "आज तक कोई रेस नहीं हारी।"

"सूं छे ? अरे क्या बात करते हो, यह तो ट्रिक (Trick) है प्लेअर्ज़ को धोखा देने का, अगली रेस में देखना। मुझे टिप मिला है टिप (कान में) जंगलदास बकवासा के जौकी ने बताया है, अब के वह हर-मैजस्टी को खैंच लेगा। साले रेस की और बात है। हम तो बम्बई में पांच पुश्त से रेस खेलते आये हैं। लाखों रुपये हार दिये। I know its ins & outs, साला सूं बात करे छे।"

रेस की बात समाप्त हो गई। सामने से एक पंजाबी पायलट गुज़रा। मोटी पारसन ने उसे लोभी नज़रों से ताकते हुए कहा "फ़ौज में सारे के सारे पंजाबी नज़र आते हैं, मगर एक बात है, जवान और तगड़े ज़रूर होते हैं और सुन्दर और सुसज्जित भी।"

"खूब !" लखऊन के गरारे ने व्यंगपूर्वक कहा और उसके बाद

जो चहकना शुरू किया तो दस मिनट तक पंजाबी पायलट को और उसके प्रांत को वह रगेदा, वह रगेदा कि बेचारे की पतलून भी उतार डाली।

इसके बाद विषय बदलने के लिए मित्र लोगों ने महारानी शाम बहार और उनकी दो जवान लड़कियों को ताका जो अभी-अभी अपने कमरे से निकल कर हाल में प्रविष्ट हो रही थीं। सुन्दर पोशाक, सुन्दर मोतियों के हार, वे तीनों फ़र्श पर इस प्रकार सलीके और रोब से चल रही थीं जैसे वे स्वयं न चल रहीं हों बल्कि कोई बैरा उनके कदमों को तश्तरी में रखकर आगे-आगे ला रहा हो।

हीरे बेचने वाले सेठ घनशामदास जौहरी ने कहा "महारानी शाम बहार के कंठ में आप जो हार देख रहे हैं, यह हमारी दुकान का है। साढ़े सात लाख में खरीदा है महारानी ने—बड़ी अच्छी हैं महारानी।"

"हला जी" सलवार बोली "इसके एडीकांग से पूछिए। बुढ़िया हो गई है फिर भी ऐसे-ऐसे जवान एडीकांग रख छोड़े हैं। मेरा भाई अजीतसिंह इसकी नौकरी छोड़ कर चला आया।"

"क्यों?"

"उसका इसकी लड़की के संग याराना हो गया था, वह जो है ना छोटी वाली, ही ही ही।" वह ज़ोर से हँसी। फिर एक दम मौन हो गई (अधिक हँसने से चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं—मैक्स फ़ैक्टर)।

× × ×

ऐसी दो-चार पार्टियाँ देख चुकने के बाद मुझे तो राज या ग्रीन होटल में जाने का साहस नहीं होता था। लेकिन मित्र पीछा नहीं

छोड़ते थे। वास्तव में हम लोग चार बजे से स्कॉच ह्विस्की की तलाश में थे लेकिन कम्बख़्त कहीं से मिलती ही न थी। एक तो लड़ाई का ज़माना, दूसरे ब्लैक-मार्केट, तीसरे अमरीकी सिपाहियों का आगमन। बम्बई में सुन्दर से सुन्दर स्त्री मिल सकती थी और वह भी बहुत सस्ती, लेकिन स्कॉच ह्विस्की किसी मूल्य पर न मिलती थी।

"हम राज नहीं जायेंगे, वहाँ अगर कोई हमारा कर्ज़ख़ाह मिल गया तो, और अगर उसने अपनी हुंडी का तकाज़ा कर दिया तो..."

"अबे कोई नहीं मिलेगा।"

"और अगर वहाँ वरली वाली भूनेश्वरी मिल गई तो? वह तो हर रोज़ शाम को वहाँ जाती है। कभी किसी कुँवर साहब के साथ, कभी किसी अमरीकन के साथ, कभी किसी फ़िल्मी लेखक के साथ। और यदि उसने वह डेढ़ सौ रुपये मांगे, जो उसके हमारी तरफ़ निकलते हैं, तो फिर? और अगर उसने राज ही में चप्पल उतार ली तो, बड़ी छछोरी घाटन है।"

"अबे तू चलेगा या बातें बनायेगा बैठे-बैठे?"

"और फिर स्कॉच तो वहाँ भी नहीं मिलेगी। खुद राज में रहने वाले ग्राहकों को नहीं मिलती। बेचारे शहज़ादे और जौहरी और चाँदी के सट्टई और राजनीतिज्ञ जिनके हुकम का सिक्का दुनिया में चलता है—वही आस्ट्रेलियन ह्विस्की पीते हैं जिससे घोड़े की लीद की बू आती है; या साऊथ अफ्रीकन ह्विस्की, जिसे सूंघ कर मन्टो की कहानी "मूतरी" याद हो उठती है।"

अब के उन्होंने मुझे कंधों से पकड़ा और उठा कर कार में डाल दिया।

× × ×

वही हुआ जिसका भय था। न स्कॉच ह्विस्की मिली न इंगलिश-जिन, न फ्रैंच शैम्पियन। हमारे साथ की बेचारी स्त्रियों के लिए शैरी तक तो मिली नहीं और ये बेचारी भारतीय पवित्र नारियाँ देसी गम्लट क्या पीतीं जिससे नशा ही नहीं होता। और जिस चीज़ से नशा ही न हो उसे हमारी शरीफ लज्जावती, सती-सावित्रियाँ क्यों पीने लगीं? एक तो पैसे खर्च करो और उस पर भी नशा नहीं—अतएव हरेक ने एक-एक गिलास टमाटो जूस का पिया।

बिल्कुल उसी समय मिस सुबहान हमारी मेज़ के सामने से गुज़र गईं। श्वेत सलवार, कासनी कमीज़, कासनी दोपट्टा, कासनी नाखून, कासनी लिपस्टिक, हमारी ओर घूरती हुई गुज़र गईं। मैंने संकेत करना चाहा लेकिन वह बिजली—कासनी बिजली की तरह—घूम गईं। मिस सुबहान के बारे में निवेदन है कि उन्हें देख कर मित्र लोगों को चाहे औरत का धोखा होता हो मुझे सदैव चूहे-दानी का धोखा होता है। अब ऐसा क्यों होता है इसकी व्याख्या मुझ से संभव नहीं। बस ऐसा होता है। (बाद में पता चला कि उन्होंने दूसरे दिन मेरा ज़िक्र इन शब्दों में किया "वह कल राज में बैठा शराब पी रहा था, एक एंगलों-इन्डियन लड़की के साथ और मैं तो राज में बाल बनवाने गई थी")।

× × ×

राज से निकल कर हम लोग ग्रीन में आये। यहाँ दूसरे दर्जे के लोग आते हैं, अर्थात् वे लोग जिनकी वार्षिक आय पचास हज़ार से ऊपर और दो लाख से कम है। प्रकट है यहाँ वे राजे और राजकुमार नहीं आ सकते जिन की रियासत का घेरा तीन मील से कम होता है, और जो इन्टर क्लास में यात्रा करते हुए भी सोचते हैं कि रियासत का खज़ाना इस का बिल कहाँ से देगा? इस भारत, स्वर्गपुरी, में अभी तक

सैंकड़ों ऐसे राजे और रानियां हैं जिन के लिए बम्बई में कास्मोपालीटन होटल ही 'सैवाये' और 'क्लैरिज' से बढ़ कर हैं।

ग्रीन में रम मिल सकती थी और सोलन और काट ६६९ और यहाँ गवानी आरकस्ट्रा सारी इंगलिश फ़िल्मों की धुनें बजाये जाता था और भारतीय स्त्रियाँ, गरारे, सलवारें और साय पहने नाच रही थीं और अमरीकी और टामी और स्वदेशी कप्तान अपनी प्रेमिकाओं के साथ इस तरह चिपके हुए थे जैसे उन्हें घोल कर पी जायेंगे। भगवान जाने मानव इतना प्यासा क्यों है। दिन-रात तो स्त्री-पुरुष का साथ रहता है, इसके बाद भी इतना प्यासा है, इतना थोड़ा दिल है। यह ऐसा निर्लज्ज क्यों है? कहीं दस मील दूर से कोई स्त्री नज़र आ जाय, यह वहीं खड़ा होकर कुत्ते की तरह हांपना शुरू कर देता है। पहले मैं समझता था शायद यह बेचारा हिन्दोस्तानी ही इस रोग में ग्रस्त है, अब अधिकतर टामियों और अमरीकनों को देख कर ख्याल होता है कि यह लानत सारे संसार में है। अर्थात् स्त्री को देखते ही एक ऐसी "नंगी भूख" सी चेहरे पर नज़र आने लगती है कि आदमी का जी चाहता है कि या तो स्वयं पागलखाने में चला जाय या उन सब को पागलखाने में भेज दे, जहाँ उन्हें ब्रोमाइड खिला-खिला कर उनका मानसिक संतुलन ठीक किया जाय। लेकिन कुछ होगा नहीं, यह सब सोचना निष्फल है। मानव अभी तक १०० प्रतिशत जंगली, वहशी और प्रतिक्रियावादी है। वह अभी तक दो प्रकार की भूख बड़ी उग्रता से अनुभव करता है। एक तो पेट की भूख और दूसरी काम सम्बंधी भूख। आप उसकी ये दोनों भूखें पूरी कर दीजिये और फिर चाहे उसे गोली मार दीजिये। युद्ध के विशेषज्ञ इसी लिये तो भरती करते हुए इन दोनों बातों को ध्यान में रखते हैं और उसके बाद उन्हें गोली मार देते हैं। यह ऊँचे और गगन-चुम्बी सभ्य जीवन (Higher Life) की चीख़ पुकार सब बकवास है।

ग्रीन होटल के नाच-घर में सब लोग या तो शराब पी रहे थे, या यूरिनल में पेशाब कर रहे थे, और हर एक के माथे पर एक शयनगृह का चित्र अंकित था। कम से कम मेरी नज़रों में सैंकड़ों सोने के कमरे खुल रहे थे। तंग कमरे, खुले कमरे, टेढ़े कमरे, बदबूदार कमरे, फ्लैटों के कमरे, बंगलों के कमरे, झोंपड़ों के दरवाज़े या तट की रेत। एक पुरुष, एक स्त्री, एक बोतल, एक पलंग। कितनी तुच्छ है मानव-प्रसन्नता अभी। छः हज़ार वर्षीय सभ्यता का शिखर अभी पलंग की ऊँचाई से ऊँचा नहीं हुआ, छः हज़ार वर्ष में सभ्यता तीन फुट से ऊपर नहीं उठी और अभी उसे चाँद तक पहुँचना है, तारों को छूना है, ये कवि भी क्या बेकार की सोचते हैं, चाँद और तारों तक जा पहुंचते हैं, और वास्तविकता यह है कि जहां तक काम-वासना के शिखर का सम्बन्ध है एक कुत्ते, एक कौकरोच और एक मनुष्य में कोई अन्तर नहीं।

ग्रीन से निराश होकर लौटे तो निश्चय किया कि जूहू चला जाये। वहां एक फ्रांसीसी दाशता ने होटल खोला था। वह पहले कोलाबा में अपना धंधा करती थी और जङ्ग का ज़माना तो आप समझिये 'बूम पीरियड' होता है। दो वर्षों ही में उसने इतना कमा लिया कि उसे जूहू पर एक अपना होटल खोलना पड़ा।

"वहां स्कॉच ज़रूर मिल जायेगी।"

मैंने कहा "अब मुझे तो छुट्टी दो, अब मैं जूहू नहीं जाऊँगा और न स्कॉच पियूंगा और उस फ्रांसीसी चुड़ैल की सूरत देख कर तो मुझे आग लग जायेगी। कमबख्त ऐसी माहिर नज़रों से देखती है, मालूम होता है आपकी जेब के सारे नोट गिन रही है। मैं नहीं जाऊँगा अब कहीं, तुम मुझे यहीं छोड़ दो।"

"अकेले क्या करोगे तुम?"

"क्या किसी से मुलाक़ात का वक्त आ गया है?"

"हमारे साथ जो ये लौंडियां हैं, क्या तुम्हें पसन्द नहीं ?"

मैंने हाथ जोड़े, पांव पड़ा, अगले इतवार का वायदा करके उन से विदा ली। सिर में सख्त दर्द हो रहा था, इसलिये समुद्र के किनारे हो लिया, और दूर तक टहलता चला गया। टहलता-टहलता गेटवे आफ़ इण्डिया पहुँच गया।

× × ×

यहां एक लड़की जिपसी औरत का सा लिबास पहने गेटवे आफ़ इण्डिया की ऊँची छत के नीचे खड़ी गा रही थी और नाच रही थी, और उसके गिर्द पारसियों, टामियों, अमरीकनों और मध्यम वर्ग के भारतीय विद्यार्थियों का समूह था। लड़की पतली, छरेरी, सुन्दर नैन नक्श और श्वेत रंग की थी। चमकते हुए दांत, ऊपर स्याह आँखें, बिल्कुल स्याह और बेहद चंचल, शरारत से भरी हुई। और ऊपर काले घुंघरियाले केश, हर ज़ुल्फ़ एक नागिन सी लहराती हुई, और नाचते-नाचते मुस्कराते हुए ओठों में कौंदे की सी लपक, और एकाएक उन ज़ुल्फों का झटक जाना, जैसे संसार पर काली घटायें छा गई हों, और स्पेनी गीत में मूरी संगीत का वहशी लहराव। उस संगीत के क्षितिज पर और उस कामिनी के शरीर में पूर्व और पश्चिम दोनों मिल गये थे; और जब भी कोई दो विपरीत चीज़ें मिलती हैं, एक नई चीज़ बन जाती है। इस दृष्टि से कारमन बिल्कुल नई थी, नई, अछूती, एक अचम्भा।

गीत समाप्त हो गया। संगीत जमकर कामिनी बन गया। नृत्य रुक कर यौवन बन गया। कारमन ने अपने हाथ फैलाये और तुतलाते हुए कहा :—

"इक पेशासी नूर।"

"सी नूर इक पेशासी।"

और चारों ओर से सिक्कों की वर्षा होने लगी। एक सिक्का मैंने भी दिया। उसकी पतली-पतली गरम उंगलियाँ मेरी उंगलियों से टकरा कर सिक्का ले गईं—कहीं दूर एक लहर सी उत्पन्न हुई, कहीं से उसका उत्तर न आया, सिक्का चला गया, लेकिन उत्तर न आया। कुछ विचित्र सी निराशा थी जैसे संतुलन बिगड़ गया हो। एक सिक्का मैंने दिया, एक सिक्का उसने लिया, बात समाप्त हो गई। हो जानी चाहिये थी लेकिन मुझे अनुभव हुआ जैसे बात समाप्त नहीं हुई। वे उंगलियाँ बहुत कुछ कह सकती थीं लेकिन उंगलियों में और नज़रों में परस्पर सम्बन्ध न था और जब एक परस्पर सम्बन्ध न हो, बिजली की लहर उत्पन्न नहीं होती, बीच ही में शार्ट सरकट हो जाती है।

मैं टहलते-टहलते आगे बढ़ गया। गेटवे आफ़ इण्डिया से बहुत दूर आगे निकल गया। थोड़ी देर मैंने गेटवे आफ़ इण्डिया और उस जन समूह को अपने साथ-साथ चलाया, तट की रेत पर, फिर गेटवे आफ़ इण्डिया और वह जन-समूह ग़ायब हो गया। फिर दूर तक कार-मन मेरे साथ-साथ तट की लहरों पर चलती रही। फिर वह ऊपर उठ कर बादलों में उड़ने लगी, फिर तारों में जाकर ग़ायब हो गई। उस के बाद अँधेरा छा गया और लहरें विचित्र सा राग गाने लगीं, और तारे पलकें झपक-झपक कर मुझे आश्चर्य से देखने लगे, और वायु अपनी शीतलता मेरे नथनों तक लाई और मेरी गरदन के गिर्द घूमने लगी, और मैंने कोट के कालर ऊपर कर लिये, और मुड़ कर घर की ओर हो लिया।

× × ×

इक पेशासी नूर
सी नूर इक पेशासी
इक पेशासी नूर

उसने मुस्करा कर आज भी एक सिक्का मेरी कांपती हुई उङ्गलियों से ले लिया। आज गेटवे आफ़ इण्डिया आते हुए और कारमन का नृत्य देखते हुए मुझे दसवां दिन था, यही कारमन, यही स्पेनी संगीत यही गेटवे आफ़ इण्डिया की ऊँची छत, यही जन-समूह। इस जन-समूह में कुछ चेहरे ऐसे भी थे जो मेरी तरह हर रोज़ आते थे। इस जन-समूह से परे पत्थर की दीवार थी और उससे परे समुद्र और समुद्र में भाप से चलने वाले जहाज़ भी थे, और छोटे अगनबोट और बड़े डैस्टरायर और नगरवासियों की सैर के लिए डीज़ल आयल से चलने वाली मोटर-किश्तियां जिनके इञ्जनों का धीमा-धीमा शोर यहां तक पहुँच रहा था। नारियल बेचने वाला सिर पर टोकरी उठाए, नारियल लादे उधर से गुज़रा और ठिठक कर रह गया। वह हर रोज़ उसी तरह ठिठक कर रुक जाता, जैसे हर रोज़ उसे एक नया अनुभव होता था। कुछ क्षणों के लिए उसकी आंखों की पुतलियां आश्चर्य से फैल जाती। एक "श्वेत रंग की मेम" गेटवे आफ़ इण्डिया की छत के नीचे नाच रही थी और इस प्रकार सड़क पर खुले-आम वह पहली बार एक श्वेत रंग की मेम को इस प्रकार रास-धारियों की तरह भीख मांगते हुए देख रहा था। कुछ क्षणों के लिए यह बात उसकी समझ में न आती और वह आश्चर्य से तकता, फिर सिर झटक कर आगे बढ़ जाता।

खोपरे का पानी, ठंडा, मीठा, मज़ेदार, लेमन जूस से अधिक मज़ेदार। खोपरे का गूदा, नरम मुलायम, मलाई की तरह, रेशमी और शीतल!

रेशमी और शीतल जैसे कारमन का शरीर!

इक पेशा सी नूर!

कारमन मेरे सामने खड़ी थी। उसके चैलेंज करते हुए ओठ बिल्कुल मेरे ओठों के सामने थे। मैंने एक सिक्का अपनी कांपती हुई उङ्गलियों में अटका लिया। कारमन ने अपने ओठ एक झटके से हटा

लिए। हाथ आगे बढ़ा दिया। सिक्का इस हाथ से उस हाथ में चला गया। गीत समाप्त हो गया। धरती-आकाश का चक्र रुक गया, तट घूमता-घूमता थम गया, लहरें काना-फूसी करते-करते चुप हो गईं और वह अमरीकी सैनिक के साथ चली गई।

वह हर संध्या को किसी न किसी के साथ सैर करने जाती थी। कोई मुड़ी हुई नाक वाला गंजा पारसी, कोई गंदे दाँतों वाला टामी, कोई चकंदर की तरह सुर्ख अमरीकी उसे अपनी गाड़ी में सवार कराकर ले जाता। उसकी मुस्कराहट कहती, कारमन तेरे साथ भी जा सकती है। उसके ओठ सदैव मेरे ओठों के सामने आकर, जन-समूह में सबके सामने, इतना निकट होकर मुझे चैलेंज करते और उसके अग्नि-श्वास की लौ एक शोले की लपक की तरह मेरे गालों से छू जाती । लेकिन मेरे दिल में एक अज्ञात सी झिझक थी, एक अत्यन्त शरमीली, नवजात कली की तरह कोमल और सरल सी झिझक जो उससे पूर्व कभी उत्पन्न न हुई थी। एक ऐसी बेनाम सी झिझक जो झिझक कम थी और चुभन अधिक थी। जैसे मैंने उससे पूर्व भी कारमन को कहीं देखा है, सुना है, पहचाना है लेकिन मालूम नहीं, कहां? मैं यह भी जानता था कि वह कहां रहती है। राज होटल के पीछे दूर तक वह इलाका था जहां फ्लैटों में अज्ञात देश की अज्ञात औरतें रहती थीं। वहीं एक फ्लैट में कारमन भी रहती थी। कई बार मैं उसके फ्लैट तक गया और फिर दरवाज़ा खटखटाये बिना लौट आया। यह पता न चलता था कि यह झिझक क्यों है, यह चुभन किस लिए है?

और फिर आज बहुत दिनों के बाद मैंने साहस करके उसका दरवाज़ा खटखटा दिया। कारमन ने दरवाज़ा खोला। वह सोने के वस्त्र पहिने हुए थी। मुझे देखकर चौंक उठी। उसकी नज़रें जैसे निराश सी हो गई हों, जैसे बुझ सी गई हों। मैंने उनमें दर्द की एक तड़पती हुई जंजीर देखी जो दूसरे क्षण में अदृश्य हो गई थी।

दूसरे क्षण में उसने कहा "अन्दर आ जाओ" और वह यह कह कर स्वयं अन्दर चली गई—"दूसरे कमरे में मैं वस्त्र बदल आऊँ।"

जब वह वस्त्र बदल कर आई तो बिलकुल भिन्न थी। गाऊन टखनों से भी नीचा था जिससे उसकी सुन्दर टांगें छुप गई थीं। उसने बाल स्पेनी शिष्ट सज्जनों की औरतों की तरह संवारे थे और उनमें चाँद का मेंटला लगाया था और उस पर महीन सा दोपट्टा टांका था जो चाँदी के लहरिये से झिलमिला रहा था। उसके ओठों की लिपस्टिक गायब थी और आँखें गहरी स्याह और सोई-सोई सी, और भयानक सी जैसे किसी तूफ़ान को अपनी गहराइयों में छुपाए हुए हो।

"आख़िर तुम भी आ गये ?"

मैंने कहा "मैं केवल गाना सुनने के लिए आया हूँ।"

"एक पेशासी नूर" वह हंसी।

मैंने कहा "तुम पेशासी क्यों कहती हो, रुपया कहो।"

"एक लूपया सी नूर" वह हंसते-हंसते लोट-पोट हो गई "एक लूपया सी नूर।"

"लूपया नहीं रुपया।"

"नहीं, मैं तो लूपया कहूंगी, या वही पेशा कहूँगी, बोलो क्या कहूँ ?" उसने मुझे डपट कर कहा।

मैंने कहा "अच्छा, तो लूपया कहो, मगर पेशा मत कहो।"

उसने मेरी ठोडी छू कर कहा "तुम बड़े अच्छे लगते हो, बिल्कुल उस गधे के बच्चे की तरह जिस पर मैं एली कांते में सवारी किया करती थी।

"तुम एली कांते की रहने वाली हो ?"

"हां, एली कांते में मेरे बाप की बेकरी थी। इतनी अच्छी डबल रोटी बनाता था वह, और मेरी मां के हाथ के क्रिसमस के केक बार्स-लोना तक जाते थे और एली कांते के बाज़ार का फ़र्श पत्थरों का बना

हुआ था। टेढ़े मेढ़े खुरदरे पत्थर, नीले पत्थर, जिन पर सदैव क़दमों से चप-चप की आवाज़ पैदा होती थी, और जो वर्षा में जीड़ के टुकड़ों की तरह चमकते थे, हाय एली कांते ! हमारी दुकान उसी बाज़ार में थी और उस दुकान के ऊपर हमारा घर था, जहां मैं और मेरा पिता और मेरी मां और मेरे दोनों भाई कोस्तरे और गारमू रहते थे। इतवार को हम लोग गिरजा से निबट कर गुरुनो के सपा में जाते।"

"गुरुनो का सपा !"

"हां" उसने अपना सिर मेरे कंधे पर रख दिया और खुली खिड़की में से समुद्र का तट, परे अग्नबोट और जहाज़ों और डैस्टरायरों की ओर देखते हुए बोली "गुरुनो का सपा, एली कांते से आठ मील दूर है। हम गधे के बच्चों पर सवार होकर जाते थे और हमारे माता-पिता गधों की सवारी करते और साथ में डबल रोटियां और मक्खन और केक और सैंडविच होते, और वह स्पैनी शराब, जो केवल स्पैनी अंजीरों से बनाई जाती है" कारमन ने अपने ओठों से सीटी बजाई "हम लोग दिन भर गुरुनो के सपा में रहते। वहां के गरम चश्मों में नहाते और तट के किनारे-किनारे रंगीन छातों के संसार में सो जाते... मेरी मां बहुत अच्छा तैर सकती थी। वह गोश्त के तिक्के और मूरी कबाब जेतून के तेल में तल कर बनाती। हाय ! वह सुगन्धि अभी तक मेरे नथनों में मौजूद है...तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरा नाम क्या होगा" मैंने मुस्करा कर कहा "मैं तो एक छोटा सा गधे का बच्चा हूँ।"

उसने अपनी आंखों से आंसू पोंछते हुए कहा "मेरे गधे का नाम टोनू था। मैं तुम्हें भी टोनू कहूँगी, "क्यों टोनू ?"

मैं गधे की तरह चिल्लाने लगा। वह ज़ोर ज़ोर से हंसने लगी। फिर एक दम चुप हो गई। बोली, "मैं कितनी मूर्ख हूँ। तुमसे बिल्कुल एक मित्र का सा, एक ग्राहक का सा व्यवहार नहीं कर रही। अच्छा मेरे अच्छे टोनू बताओ क्या पियोगे, शराब या टोमाटो जूस ?"

स्पेनी गीत सुनादो और साथ उसका अर्थ भी बतादो।"

उसकी आंखों में फिर वही वेदना की लहर उत्पन्न हुई और मर गई। फिर वह हंस कर बोली 'मैं तो हमेशा गंदे गीत गाती हूं, तुम उनका अर्थ समझ कर शरमा तो नहीं जाओगे?"

मैं चुप हो रहा।

वह उठ कर सामने मेज़ तक गई और वहां से गिटार उठा लाई और सामने कुरसी पर बैठकर उसे बजाने लगी। बजाते-बजाते बोली, "अच्छा तो सुनो, तुम्हारे लिए एक पुराना गीत गाती हूं, केवल तुम्हारे लिए। एक साफ़ सुथरा गीत। एक अबोध बालक की तरह भोला भाला गीत गाती हूँ।"

मेरे छोटे से सिग्रेट केस
आज तुम बिल्कुल खाली हो
कल इतवार है लेकिन
कल तुम्हें भर दूंगी (सिग्रटों से)
आज मेरे पास केवल दो सिग्रेट हैं
जिन्हें तीन चाहने वाले मांगते हैं
दो और तीन पांच होते हैं
और पांच से दस होते हैं
और दस से बीस होते हैं
बीस में से पांच कम करो तो पन्द्रह
पन्द्रह में से पांच कम करो तो दस
दस में से पांच कम करो तो पांच
और पांच से दस होते हैं
और दस से बीस होते हैं

"हा हा हा" गीत समाप्त होते ही वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी "देखा कितना अच्छा गीत था टोनू, एक लूपिया निकालो।"

कुछ विचित्र सा गीत था। बिल्कुल मामूली, शब्दों की तकरार थी और अक्षरों की गिनती। लेकिन सिग्रेटों की कसैली सी बू और उनका तेज़ सा स्वाद उसमें भरा हुआ था। उस गीत में विचित्र प्रकार का धुआं सा था जो भीतर जाकर चुभता था और कुछ ऐसी लहरें छोड़ता था जो हृदय के तट से छू कर कहती थी, तुम हमें जानते हो, तुम हमें जानते हो, यह धुन, यह गीत, यह तकरार तुम्हारी है।

मैंने उसे दस रुपये का नोट दिया "कारमन, अजीब सी धुन है अपरिचित भी और परिचित भी। पूरा संगीत है। एशियाई, अफ़रीकी और युरोपियन संगीत का अनोखा समन्वय जो एक ही समय में कई लहरें उत्पन्न करता है—तुम्हारे सौन्दर्य की तरह जो एशियाई है, जो युरोपियन है, जो अफ़रीकी है।"

तीन महाद्वीपों ने मिल कर इसका ख़मीर उठाया है। तू मेरे लिए अपरिचित भी है और परिचित भी। मैं तुझे जानता हूँ और नहीं भी जानता।"

"पूरी तरह से जान लो" उसने हंस कर कहा, "सौ रुपये का हरा नोट चाहिए सी नूर।"

मैंने उठ कर कहा "तो मैं जाता हूं, तुम समझती हो मैं तुम्हें सौ का नोट नहीं दे सकता?"

वह देर तक मेरी आंखों में देखती रही। एक दम गंभीर सी हो कर बोली "प्रेम का खेल मुझ से न खेलो। मैं दलित औरत हूँ, फिर भी औरत हूँ। इस खेल में सदैव औरत की हार होती है। मैं कल से तुम्हें फ्लैट में न घुसने दूंगी।"

"अपने प्रेमी को न घुसने देना, टोनू तो आ सकेगा।"

"तुम मेरी बुद्धि से परे की चीज़ हो, अच्छा तो चलो कोई पिक्चर ही देखें।"

टोनू और कारमन बहुत अच्छे मित्र बन गये। टोनू कोई सुधारक न था कि दलित लौंडियों का जीवन सुधारता। वह कारमन में दिलचस्पी ले रहा था, अपने किसी भाव की तृप्ति के लिए। यह भाव प्रेम का न था, इतना उसे मालूम था। यह शरीर की पुकार भी न थी, यह भी वह जानता था। कारमन अत्यन्त सुन्दर थी। ज्वालामुखी लावे की तरह सुन्दर। वह उसके अग्न-ओठों की परिभाषा पढ़ सकता था। उसकी काली आंखों की गहराइयां माप सकता था। उसकी लचकती हुई कमर के दायरों में घूम सकता था। लेकिन यह सब कुछ जानते हुए भी एक असाधारण झिझक उसके रास्ते में बाधा बनी हुई थी। वह जब तक उस झिझक को पढ़ न ले, उसका अनुमान न कर ले, उसे समझ न ले, वह कैसे आगे बढ़ सकता था? परिणाम यह हुआ कि वे बड़े अच्छे मित्र बन गये। वह बड़ा बुद्धिमान व्यक्ति था। उसकी बुद्धि स्टौक एक्सचेंज पर आज़माई जाती और हज़ारों के वारे-न्यारे हो जाते। उसकी बुद्धि एक तेज़ छुरी की तरह थी। बड़े-बड़े ब्रोकर उससे डरते थे। स्टॉक एक्सचेंज पर उसके खेल लोगों की समझ में न आते थे। लोग हारते और जीतते लेकिन वह सदैव जीतता। वह स्टॉक एक्सचेंज की हर गुत्थी सुलझा सकता था, केवल उससे कारमन के नशे की गूंज का विश्लेषण न हो सकता था।

वे दोनों बड़े अच्छे मित्र बन गये। टोनू ने कारमन को सुधारने की कोई कोशिश न की। कारमन गेटवे आफ़ इंडिया में नाचती थी, गाती थी, रुपया हुन की तरह बरसता था, शाम को किसी के साथ सैर के लिए चली जाती, फिर रात बाहिर रहती या फ्लैट में शराब पीकर सो रहती। टोनू उसे तीसरे पहर के निकट सोते से जगाता।

"उठो उठो"

"सोने दो मुझे"

"उठो उठो, तुम्हारी दुकान के खुलने का समय आगया"

"टोनू, चाय बनाओ मेरे लिऐ।"

"टोनू मैं आज हरा गाऊन पहनूंगी।"

"टोनू मैं आज साड़ी क्यों न पहनूं ?"

लेकिन मुंह-हाथ धोकर वह सदैव जेड के रंग का गाऊन पहनती जो उस ने टोनू से पहली मुलाक़ात के दिन पहना था। वही गाऊन, वही मंटीला, वही दोपट्टा। फिर वे दोनों चाय पीते, फिर वह उसे अपने ऐलबम दिखाती। अपनी मां का फ़ोटो, अपने पिता का फ़ोटो। यह मेरा बड़ा भाई है, यह मुझ से छोटा भाई है। यह मेरी फूफी है। यह मेरा मंगेतर था—बैलों से लड़ने वाला—खूनी बैलों से लड़ने वाला—डान अंज़ियानो।"

अंज़ियानो तंग पतलून और पटका बांधे खड़ा था, उस की छाती चौड़ी थी, ओठ पतले, आंखें गहरी और भावुक और वह पूरी बाहों वाली कमीज़ पहने एक विचित्र शान से खड़ा था। दाईं तरफ़ फोटोग्राफ़र ने ज़ेतून की एक टहनी से संतुलन कायम किया हुआ था।

पहली बार जब मैंने यह फोटो देखा तो पूछा "कारमन! फिर क्या हुआ ?"

उस ने ज़ोर से एलबम बन्द कर दिया और मेरी ओर देख कर बोली, "तुम्हें पूछने का कोई अधिकार नहीं, गैट आऊट।"

मेरा आश्चर्य बढ़ गया। लेकिन उसने मुझे कमरे से बाहर निकाल कर ही दम लिया। उस दिन के बाद मैंने कभी उस से कुछ नहीं कहा, लेकिन हम दोनों हर रोज़ यह एलबम देखते, खुशी-खुशी चाय पीते। उस के बाद वह गेटवे आफ इण्डिया चली जाती, मैं अपने मित्रों में आ जाता। सप्ताह में दो दिन मैं और कारमन बाहर जाते। ये दो दिन उसके टोनू के होते थे। उस दिन उसकी दुकान बन्द रहती थी। उस के गालों पर ग़ाज़ा न होता था, उस के ओठों पर लाली न होती थी, उसकी आँखों में मेकरा न पड़ता था। उस दिन एक स्पेनी गाँव

की लड़की की तरह वह मेरे साथ चलती। हँसती, खेलती, नाचती, गाती, नंगे पांव दौड़ती, झाड़ियों से तीतरियां पकड़ती, रास्ता चलते हुए बच्चों से प्यार करती। हम लोग प्रायः शहर से बहुत दूर निकल जाते, कभी कल्यान के पास, कभी घोड़बन्दर से आगे। मेरे पास स्पेनी गीतों का संग्रह हो गया था। मैं अपने मित्रों में बहुत बदनाम हो गया था, लेकिन झिझक पूर्ववत चली आ रही थी।

× × ×

एक इतवार को मैंने उस से कहा "कारमन, मैं अगले बुध को न आ सकूंगा।"

"क्यों?"

"उस दिन मेरी बहन की शादी है।"

"तुम्हारी बहन की शादी है और तुम मुझे नहीं ले चलोगे?"

मैं सटपटा गया, कुछ न कह सका।

उसने सख्ती से मेरा हाथ पकड़ लिया और कटुता से कहने लगी, "टोनू, मैं अवश्य चलूंगी। कारमन तुम्हारी बहन की शादी में अवश्य चलेगी। तुम मुझे ले जाओ न ले जाओ, मैं स्वयं वहां पहुंच जाऊँगी।"

"अच्छा, तो मैं तुम्हें स्वयं आकर ले जाऊँगा।"

"और तुम्हें, अभी इसी समय, मेरे साथ चलना होगा।"

"कहां?"

"बाज़ार में, मुझे कुछ खरीदना है।"

× × ×

वह सब कुछ उठा लाई। जितने रुपये थे उस के पास। उस के पास बहुत रुपया था। उस ने बहुत कुछ खरीदा, ज़ेवर, कपड़े, बरतन जहाँ मैंने कुछ कहा और उस ने डांट पिलाई, "तुम्हें इस से क्या, ये मेरे रुपये हैं। मैं चाहे इन्हें फूंक दूं, चाहे जला दूं।"

मैंने कहा, "समझ से काम लो, भावुक न बनो, तुम ही ने तो कहा था, औरत प्रेम के मामले में सदैव हार जाती है।"

"कौन सूअर तुम से प्रेम करता है?"

विवाह की रात वह सहेलियों में ऐसे घुल-मिल गई कि मुझे कुछ पता न चला कि वह कहां है और क्या कर रही है। वह अपरिचित लड़की, वह बाज़ार की वेश्या, शराफ़त का झूठा लिबास पहने विवाह की परम्पराओं में शामिल हो रही थी। स्वयं ढोलक बजाना सीख रही थी। विचित्र-विचित्र से स्वांग भर कर मेहमान औरतों का जी बहला रही थी, नाच रही थी, गा रही थी, दुल्हन के मेंहदी रचा रही थी।

फिर बारात आ गई, दुल्हा को भीतर लाया गया, सहेलियों ने गीत गाये। दुल्हा के सिर पर से रुपये वारे गये। कारमन ने कांपते हाथों से रुपये घुमा कर फैंके और फिर दुल्हा को हाथ से पकड़ कर ड्योढ़ी के भीतर लाई।

फिर वह भागी-भागी दुल्हन के पास पहुँची और देर तक घूंघट उठाये उसकी सूरत देखती रही। फिर उसका चेहरा मलिन हो गया और वह कांपने लगी और कांपते-कांपते गिर पड़ी। देर तक मूर्छित पड़ी रही। जब होश में आई तो मुझ से कहने लगी "टोनू, मुझे गाड़ी मंगा दो, मै जाऊँगी।"

मैंने कुछ नहीं कहा, मेरा हृदय उसके बहुत निकट आ गया था। वह चली गई।

एक बजे के निकट विवाह की रस्म पूरी हो गई और बधाई के तराने ने, औरतों के गीतों ने और बैंड के नग़मों ने और बच्चों के शोरगुल ने आसमान सिर पर उठा लिया और उन समस्त आवाज़ों, चित्रों, भावों के ऊपर कारमन का चेहरा घूमने लगा। मौन चेहरा, सुता हुआ चेहरा चुपचाप मेरी ओर तकता गया, देर तक वातावरण में तैरता रहा यहां तक कि मैंने भी गाड़ी ली और उस में बैठ कर उसके हां जा पहुँचा।

वह शराब पी रही थी।

उसने मुझे बोतल दिखा कर कहा "असली बोखे है। पियोगे?"

मैंने उस से गिलास छीनते हुए कहा "सो जाओ।"

वह चीख़ कर बोली "मेरा गिलास वापिस कर दो। तुमने मेरा सब कुछ मुझ से छीन लिया। अब मेरा गिलास भी मुझसे छीनते हो, कमीने।"

मैंने कहा "मैंने छीना है तुम से? तुम इन कपड़ों और ज़ेवरों का तो ज़िक्र नहीं कर रही हो?"

"नहीं, मैं तुम्हारा ज़िक्र कर रही हूँ—तुम जनरल फ्रांको हो।"

"क्या बक रही हो?"

"मैं बक रही हूँ? सुनो! मैं बक रही हूं! वाह रे मेरे जनरल फ्रांको।"

"मैं टोनू हूँ कारमन! लो अब सो जाओ।"

"नहीं, तुम मुझे वहां शादी पर क्यों ले गये? मैंने कहा था, फिर भी तुम मुझे वहां क्यों ले गये? क्राईस्ट! अच्छा होता अगर मैं मर जाती!"

"कारमन! कारमन!!"

"कारमन को कौन बुला रहा है? वह कारमन जो अपने मां-बाप की बेटी थी, अपने भाइयों की बहिन थी, अपने मंगेतर की होने

वाली पत्नी थी। उसे जनरल फ्रांको ने फांसी पर चढ़ा दिया। ज़िन्दा-बाद फ्रांको।"

"कारमन की स्याह पुतलियों में शोले नाच रहे थे। उसने अपनी उंगलियों में मेरे हाथ की उंगलियां ले लीं। शिकंजे की तरह कस लीं, बोली "मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम इस तरह से हमें क्यों मारते हो? पहले तुमने मेरे मां-बाप को मारा, क्योंकि वह कम्यूनिस्ट थे। फिर मेरे दोनों भाई युद्ध-भूमि में मारे गये, एक मैडरिड में, एक बार्सलोना में। मैं और मेरा मंगेतर ऐली कांते से भाग खड़े हुए, हम दोनों मैडरिड के रणक्षेत्र में लड़ते रहे। वे हमें हरा न सके। तुम भूलते हो। मैड्रिड कभी नहीं जीता गया, वह वहां जीवित है, मेरी छातियों की हर बूंद में।"

उसने गिलास समाप्त कर दिया। मैंने बोतल परे सरका दी "सो जाओ कारमन!"

"कौन सोयेगा आज। वह खंदक देख रहे हो। दायें तरफ साईन मेरिया का गिरजा है, बाईं तरफ तांबे के मिल की टूटी हुई दीवार। सामने दुश्मनों की खंदक। बीच में अंजीर का पेड़, जहां मेरा मंगेतर मरा था।"

"तुम्हारा मंगेतर!"

"इतनी जल्दी भूल गये। डान ग्रेज़ तो इतनी जल्दी भुला देने वाला जवान न था। वह सुन्दर था, वह दिल का सुन्दर था, उसकी राईफल सुन्दर थी। हम सात दिन लड़ते रहे, खाने के लिए केवल तीन बिस्कुट मिलते थे। डान ग्रेज़ियानो जो खूनी बैलों से लड़ता था। आज भी खूनी बैलों से लड़ रहा था—बोतल इधर लाओ।"

मैंने बोतल उसके सामने रख दी।

"यह बोखे की खालिस शराब है। कितना अच्छा स्वाद है इसका! प्यास बुझा देती है। लेकिन उस समय हमारे पास शराब तो

क्या, पानी की भी एक बूंद न थी। पानी मिल के भीतर था और डान ग्रेज़ियानो अपनी जगह से हिल न सकता था जब तक कि कोई उसकी जगह पर न आ जाये। तब मैं स्वयं पानी लाने के लिए उठी।

"नल से पानी भर कर लौट रही थी कि दुश्मनों ने, जो मिल के भीतर छुपे हुए थे, गोली चलाई, यहां बाजू में लगी, यह निशान देख सकते हो। पढ़ सकते हो यह निशान क्या कहता है?"

मैं चुप था।

"मैं पानी ले आई, लेकिन जल्दी में ग़लत रास्ते से भागी और जब मिल से बाहर निकली तो दोनों खंदकों के बीच थी और सामने अंजीर का पेड़ था। ग्रेज़ियानो ने कहा 'लेट जाओ'। मैं घिसटने लगी लेकिन पानी बर्तन में मौजूद था। दुश्मन गोलियां बरसा रहा था। मैं घिसट रही थी और खून मेरे बाजू से बह रहा था। फिर मैं मूर्छित हो गई। डान ग्रेज़ियानो चीते की तरह लपक कर आगे बढ़ा। सनसनाती हुई गोलियां निकल गईं। उसने मुझे उठा लिया और वापस अपनी खंदक को चला जैसे विजयी खूनी बैल को घायल करके ऐम्फीथियेटर से बाहर आ रहा हो।

"मैं उसकी गोदी में थी। गोलियों का संगीत चारों ओर था। गोली उसकी पीठ में घुस गई थी। वह मुझे शादी की अंगूठी पहना रहा था—'सुनो सुनो कारमन, मैं मर रहा हूँ। अन्तिम बार सुन लो कारमन! मैं मर रहा हूं लेकिन तुम मेरी बीवी हो'।"

"उसके ओठ मेरे ओठों से मिल गये। मैंने उसके गले में बांहें डाल कर कहा, "मैं तुम्हें मरने न दूंगी।"

"वह हँसा, 'मुझे एक सिग्रेट दो' और धीरे-धीरे सिग्रेट पीते हुए गाने लगा:—

मेरे छोटे से सिग्रेट केस
आज तुम बिल्कुल खाली हो

कल इतवार है लेकिन
कल तुम्हें भर दूंगा (सिग्रेटों से)
आज मेरे पास केवल दो सिग्रेट हैं
जिन्हें तीन सिपाही पीना चाहते हैं।
दो और तीन पांच होते हैं!"

"कारमन ! कारमन !!"

वह ऊँचे स्वरों में गा रही थी। एकाएक मौन होगई। फिर धीरे से बोली "वह गीत गाते-गाते मर गया।"

"और बिल्कुल उसी समय सान मेरिया के गिरजा के घंटे झन-झना उठे।"

"जिस तरह आज दुल्हा की आरती के समय घंटे झनझनाये थे।"

"क्राइस्ट !"

वह तकिये में सिर छुपा कर रोने लगी। फिर एकाएक उसने सिर उठाया और मेरी ओर आग-भरी नज़रों से देख कर बोली "क्यों मारते हैं वे, क्यों मारते हैं वे? इस प्रकार बच्चों को मार देते हैं। लड़कों को गोली का निशाना बना देते हैं, मां-बाप को फांसी पर चढ़ा देते हैं। बहिनों की इज़्ज़त लूट लेते हैं—ओह ! ओह !!"

वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी।

"यह जंग, मुझे इस से घृणा है। यह जंग कब समाप्त होगी?"

"हो जायगी"

"हां हो जायगी टोनू !" वह अपने आंसू पोंछने लगी। उसका स्वर एकदम बदल गया। वह एक विचित्र ढंग से प्रसन्न होकर बोली, "हां ज़रूर होजायगी टोनू। हो जायगी, जैसे आज तुम्हारी बहिन की शादी हो गई है। मैं आज बहुत प्रसन्न हूं टोनू! आज मुझे अपना अंजीर का पेड़ मिल गया है। एली कांते के बाज़ार का फ़र्श जेड की तरह चमक रहा है। हम गधों पर सवार होकर गुरुनो केसपा को

जा रहे हैं। रास्ते में वृक्ष अंजीरों से लदे खड़े हैं और वातावरण गुलाब के फूलों से महक रहा है। आज मेरी शादी हुई है टोनू। सुनते हो, आज मेरी शादी हुई है। डान ग्रेज़ियानो मेरी गोद में है, उसकी शादी की अंगूठी मेरी उंगली में है और सान मेरिया का गिरजा घंटे बजा रहा है। सुनते हो टोनू! यह सान मेरिया की घंटियों का स्वर......यह सान मेरिया की घंटियों का स्वर है......"

कारमन सो गई।

× × ×

दूसरे दिन मैं उसके फ्लैट पर गया लेकिन वहां कोई न था। गेटवे आफ़ इंडिया पहुँचा तो वह उसी प्रकार नाच रही थी और रिझा रही थी और उसकी स्याह आंखों में शरारत भरी हुई थी और स्याह घुंघरियाले बाल यूं झटक जाते जैसे विश्व पर काली बदलियां छा रही हों, और स्पेनी गीत में मूरी नगमे का वहशी लहसव कांप-कांप जाता था। एक पेशा सी नूर।

और चारों ओर से सिक्कों की वर्षा हो गई। एक सिक्का मैंने भी दिया। उस की पतली-पतली उंगलियां आगे बढ़ी, फिर रुक गईं। वह एक "अपरिचित" रूप से आगे बढ़ गई जैसे उसने मुझे कभी न देखा था, न कभी पहचाना था। हृदय को शांति मिली। एक सिक्का मैंने दिया, वह सिक्का उस ने नहीं लिया। बात समाप्त हो गई। मुझे अनुभव हुआ जैसे बात समाप्त हो गई है, सदैव के लिए।

मैं टहलता-टहलता आगे बढ़ गया। गेटवे आफ़ इंडिया से बहुत दूर आगे निकल गया। थोड़ी दूर तक मैंने गेटवे आफ़ इंडिया और कारमन और उस जनसमूह को, जो उसके गिर्द था अपने साथ-साथ तट की रेत पर चलाया। फिर गेटवे आफ़ इंडिया और वह जनसमूह गायब हो गया और केवल कारमन रह गई जो दूर तक मेरे साथ

समुद्र की लहरों पर चलती गई। फिर वह भी ऊपर उठ कर अन्तरिक्ष के बादलों पर उड़ने लगी और फिर तारों में जाकर विलीन हो गई। उसके बाद अंधकार छा गया और लहरें विचित्र से राग अलापने लगीं और तारे पलकें झपक-झपक कर मुझे आश्चर्य से देखने लगे।

और दूर, कहीं बहुत दूर, सान मेरिया के गिरजा के घंटे बजने लगे।

: ७ :

घाटी

वह उचक कर खेत की मेंढ पर आ रहा और धूप तेज़ होने के कारण आंखों के ऊपर हाथ रख कर दृश्य देखने लगा। खेत में दूर तक कपास के फूल खिले हुए थे। ये खेत मेंढ से ढलान की ओर जाते थे और फिर घाटी तक उसी प्रकार चले गये थे। घाटी के ऊपर भी जहां तक नज़र जाती थी, कपास के फूल खिले हुए थे। बीच में कपास के श्वेत फूल और खेतों के चौकोर किनारों पर सन के सुनहले पीले-पीले फूल। कहीं से वायु का एक तेज़ झोंका आया और खेत जो नीचे से ऊपर की ओर जाते थे झाग उगलता हुआ समुद्र बन गये। लहरें, झाग ही झाग। टेढ़ी-टेढ़ी उछाल, बल खाती हुई घाटी के ऊपर ही ऊपर उठती गई और सन के सुनहले फूल डालियों पर डोलने लगे। घाटी के ऊपर एक चरवाहा नज़र आया जो गायों को छड़ी से हांकता हुआ गांव की ओर ले जा रहा था—गांव जो घाटी के बिल्कुल दूसरी ओर चोटी से ज़रा इधर ढलवान तलहटी में था।

राज सिंह ने अपने दोनों हाथ कानों पर रक्खे और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया "ओ जवान! जवान ओए ए-ए।"

ऊपर चरवाहे ने घूम कर देखा। राज सिंह की आवाज़ अभी तक ऊंची घाटी की सलवटों और चट्टानों में गूंज रही थी। उसने अपने माथे पर हाथ रखा। फिर राज सिंह की तरह अपने दोनों हाथ कानों पर रखे और चिल्ला कर कहा "हला ओए ए ए।"

गायें चरते-चरते रुक गईं और गरदन मोड़ कर नीचे देखने लगीं। दूर नीचे जहां राजसिंह खड़ा था।

राजसिंह फिर चिल्लाया "ओ जवान, मेरे घर कह देना, राजसिंह जमादार आ गया आ-आ।"

"ओए सलाम ठाकुर चाचा, राज़ी बाज़ी तगड़ा खुश एँ एं एं।" चरवाहा वहीं दो मील दूर से चिल्लाया। उस हर्षपूर्ण स्वर ने सारी वादी को अपने प्रसन्नतापूर्ण संगीत से परिपूर्ण कर दिया।

"याकूब किधर ए-ए" चरवाहे ने तुरन्त ही पूछा।

"ओ—मैं बड़ा तगड़ा राज़ी बाज़ी आं, याकूब लाला वी बड़ा खुश ए। पिंडीं मिलया सी। जल्दी आवेगा, जवान ओए। मेरे घर ख़बर कर देना ओए ए-ए।"

चीख़ते-चीख़ते राजसिंह का दम फूल गया, मुख लाल हो उठा। चेहरे की रगें तन गईं। एक समय से वह टेलीफोन पर बात करने का अभ्यस्त हो चुका था और गाँव के इस टेलीफोन को बिल्कुल ही भूल गया था जो बिना किसी तार के या बिजली की बैट्री के पांच-छः मील के घेरे में काम आ सकता है। यहाँ आम बोल-चाल की भाषा नहीं चलती। इसका व्याकरण ही अलग है। वाक्य अलग-अलग नहीं बोले जाते। मशीनगन की गोलियों की तरह एक साथ तड़ातड़ लेकिन घूम कर निकलते हैं क्योंकि मतलब उनका वादी में गूंज उत्पन्न करना होता है। जब तक शब्दों से गूंज उत्पन्न न हो गांव का यह टेलीफ़ोन काम नहीं करता। इसके अतिरिक्त इनके इस्तेमाल में फेफड़ों की पूरी शक्ति लगती है और गले का तम्बूरा सदैव कसा रहता है। राजसिंह ने रूमाल से अपना चेहरा साफ़ किया और मुस्कराने लगा। पहले तो वह कितनी देर तक इस प्रकार घाटी की चोटी पर या घाटी के नीचे खड़े-खड़े बातें कर सकता था। बचपन में जब बड़े ठाकुर हल चलाने के लिए नीचे खेतों में जाते तो वह दोपहर के समय चिल्ला कर कहता "रोटी—रो-रो-रोटी अछुती ओए ए" (रोटी आई है)।

और उसका बाप वहीं खेतों में से चिल्ला कर कहता "बहल कर लाये नठिया आ आ" (जल्दी से ले आ बेटा)।

और फिर उसे याद आया कि जब महायुद्ध से पूर्व कहोटा की मोटर रोड तय्यार हो रही थी और उसने खेत की मेंढ पर खड़े-खड़े गरदन मोड़ कर अपने पीछे, नीचे बहते हुए नाले को देखा जिसके किनारे-किनारे वह मोटर रोड गुज़र रही थी, तो उसकी याद के झिल-मिलाते सुनहले सायों में वे क्षण एकदम जीवित हो उठे जब यहां इस नदी के किनारे ख़ेमे लगे थे और मज़दूर पत्थर कूट-कूट कर रोड़ी तय्यार कर रहे थे और खूबचन्द ब्राह्मण जो ब्रह्मपुर का रहने वाला था इस मोटर रोड का ठेका लेकर रावलपिंडी से आया था। वह भी एक बड़े ख़ेमे में रहता था और उसके बीवी-बच्चे भी वहीं आ गये थे थोड़े दिनों के लिए। उसकी पत्नी बर्मा की रहने वाली थी और पहाड़ी बोली नहीं जानती थी। हां उसकी दोनों बेटियां पहाड़ी बोली में फ़र-फ़र बातें करती थीं और फिर कभी-कभी बर्मी भाषा में न जाने क्या ऊटपटांग बातें करने लगतीं। अंजना और संजना, वे दोनो बहिनें कितनी चंचल और निडर थीं बर्मी स्त्रियों की तरह। और राजसिंह को वह क्षण याद हो आया जब इसी खेत में घुस कर उसने अंजना को तरेड़ी चुराते हुए पकड़ लिया था। नीचे नदी के किनारे सड़क बन रही थी और लोहे का भारी-भरकम रौलर झूमता-झामता सड़क पर पत्थर के टुकड़ों को समतल कर रहा था। और परे बड़े ख़ेमे के बाहर अंजना का बाप एक आराम कुर्सी पर लेटा ऊंघ रहा था। और उसका अंग्रेज़ मैनेजर अपने ख़ेमे से स्लीपिंग गाऊन पहने, तौलिया सिर पर डाले नहाने के लिए जा रहा था और वातावरण में गुटारिया करायें करायें करती हुई अपने भूरे सुनहरी पर तोलते हुए उड़ गईं। और राजसिंह जो बड़े ठाकुर के लिए खाना ले जा रहा था, खेतों में सरसरा-हट सी होते देख कर रुक गया और अपनी जगह दुबक कर बैठ गया। बारह बजे का समय होगा लेकिन वातावरण अभी तक पाले से जकड़ा

हुआ मालूम होता था। घास पर ओस अभी तक सूखी न थी और तरेड़ियों की महक नथनों में घुसती चली आ रही थी।

फिर सरसराहट उत्पन्न हुई। राजसिंह भागता हुआ बैलों की ओर गया। अंजना घबरा कर उठ खड़ी हुई, उसके हाथ में सब्ज़-सब्ज़ लचकीली और कोमल तरेड़ियों के दो दाने थे। चोरी के ख्याल से उसका चेहरा बिल्कुल सुर्ख हो गया था और आंखें असाधारण रूप से चमक रही थीं और उसकी छोटी-सी नाक बड़ी अजीब नज़र आ रही थी और उसका छोटा-सा कद और उसका गोल-मटोल-सा शरीर, राजसिंह को उस समय अंजना बिल्कुल एक लचकीली और कोमल तरेड़ी की तरह मालूम हुई। उसने अंजना का हाथ पकड़ कर कहा "खाओ, सोनियों खूब खाओ। और उतार दूं ?"

और अंजना ने हाथ झटक दिया और तरेड़ियां फैंक दीं और खेत की मेंढ की ओर भाग गई। और इतनी ऊंचाई से दूसरी ओर छलांग लगा कर नीचे सड़क पर उतर गई और भागते-भागते अपने ख़ेमे में चली गई और राजसिंह हंसने लगा और बड़े ठाकुर का खाना उठाये आगे चल दिया, और 'चन्ना' गाता हुआ दूर निकल गया। और अंजना देर तक उसके हाथ के स्पर्श का अनुभव करती रही और राज की निकटता और उसका बल और उसकी जवानी और उसकी हंसी और निडरता और विचित्र-सी पुष्टिवर्धक सुगन्धि जो पुरुष के शरीर से उठती है, उसके नारी-हृदय पर छा गई। और उसने चाहा कि वह कल फिर तरेड़ियां चुराने जाये और राज के हाथों पकड़ी जाय और खूब-खूब पिटे। उसके बाप ने भी उसे कई बार पीटा था लेकिन वह और बात थी शायद, अन्यथा उसे राज के हाथों पिटने की इच्छा क्यों होती। उस रात वह ठीक तरह से न सो सकी थी और कुछ विचित्र प्रकार की सुगन्धियाँ, परछाइयाँ और गूंजें उसकी निद्रा के सुन्दर संसारों में कांपती रहीं और एक मीठा-मीठा गरम गीत बन कर उसकी

आत्मा में रचती चली गईं। सुबह जब वह उठी तो उसका सारा शरीर फोड़े की तरह दुख रहा था और जब कल की तरह, उसी समय, वह खेतों में जाने-बूझे चोरी करने और अनजाने में राज से मिलने के लिए गई तो उसे निराशा न हुई।

राज ने पूछा "संजना तुम्हारी छोटी बहिन है या बड़ी ?"

"तुम्हें क्या मालूम होता है ?"

"मालूम होता है कि तुम छोटी हो।"

"हां," अंजना ने प्रसन्नतापूर्ण स्वर में कहा "और तुम्हारा कोई बड़ा भाई भी है ?"

"नहीं, एक छोटी बहिन है, पर वह बहुत छोटी है। आठ वर्ष की।"

"तुम क्या करते हो ?"

"मैं एफ़० ए० में पढ़ता था गार्डन कालेज रावलपिंडी में। फिर हमारे पिता जी का देहांत हो गया। गिरदावर थे इस इलाके में। अब हमारे दादा खेती-बाड़ी करते हैं। हमने क्लर्की के लिये आवेदन-पत्र दे रखा है।"

"तुम स्वयं कोई काम क्यों नहीं करते ?"

"दादा नहीं करने देते। कहते हैं मैं तुझे नौकरी कराऊंगा बाप की तरह। मेरे दादा का स्वभाव बहुत सख़्त है। मैं उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकता।"

"खेती-बाड़ी भी नहीं ?"

"नहीं।"

"तो हमारे हां नौकरी कर लो। मुंशी की एक जगह खाली है।"

"दादा कहते हैं, केवल सरकारी नौकरी लेकर दूंगा तुम्हें। यह फ़सल कट जायगी तो मुझे डिप्टी कमिश्नर के पास ले जायेंगे।"

"हमारे पिताजी डिप्टी कमिश्नर तो क्या लाट साहब को भी जानते हैं।"

"हमारे पिता जी मर गये, नहीं तो हम भी लाट साहब को यहां शिकार पर बुला रहे थे।"

"शिकार पर ?"

"हां, मैं बन्दूक बहुत अच्छी चला लेता हूँ और मेरे दादा भी। और हमारे पिता का निशाना तो कभी भी न चूकता था।"

वे दोनों चुप हो गये। एक दूसरे की ओर देखने लगे। अब तक किसी ने हार न मानी थी। अंजना कह रही थी, मैं औरत हूँ, कंवारी धरती हूँ, मुझ में रस है, सुगंधि है—सुन्दरता की ज्योति। मेरे बाप के पास रुपया है, मोटर रोड का ठेका है, अंग्रेज़ मैनेजर है, मेरी मां बर्मा की स्वतंत्र नारी है। तुम कौन हो ?—जंगली, वहशी, निर्धन, बेकार।

मगर तुम्हें अच्छा तो लगता हूँ, राज का दिल कह रहा था। मुझ में भी रस है, सुगंधि है, यौवन का अथाह समुद्र है। आओ, तुम्हें इसकी गहराइयों में ले चलूं। तुम कंवारी धरती हो तो मेरा बीज भी कंवारा है और आत्मा ऐसी उजली है जैसे पिछले पहर में कपास के सोये हुए फूल। और फिर राज को लगा जैसे वह मौन क्षण बार-बार कह रहा है—आओ इन्हें जगा दें, आओ इन्हें जगा दें। और राज ने आगे बढ़ कर अंजना को अपनी बांहों में उठा लिया और उसके ओठ चूमने लगा, क्योंकि यह क्षण उसकी प्रतीक्षा में था। जब से यह धरती बनी है, यह आकाश बना है, यह वायुमंडल बना है, यह क्षण उनकी प्रतीक्षा में था, श्वास रोके हुए, आश्चर्यचकित, अनुभूति-पूर्ण चुप्पी में गुम आदिकाल से उनकी प्रतीक्षा कर रहा था कि वे आयें, उनके ओठ मिलें और यह क्षण जाग उठे। यह संसार खिलखिला कर हंस पड़े और यह आकाश संगीत से परिपूर्ण हो जाये। और यह मौन, प्रतीक्षित, आश्चर्यचकित क्षण एक रंगीन बुलबुले की तरह वातावरण में उड़ता-उड़ता लुप्त हो जाये।

राज ने आश्चर्य से कहा "तुम्हारे ओठ मैंने क्यों चूमे ?"

उत्तर में अंजना ने अपनी आंखें बन्द कर लीं और कहा "हाय"। हाय ऐसे कहा उसने जैसे उस में सुख न हो, दुःख ही दुःख हो, नारी के सारे जीवन का दुःख, ममता का दुःख, उत्पत्ति की तड़प, अपने आप को खोकर किसी नये जीवन को जन्म देने की पीड़ा। उस 'हाय' से जैसे कंवारपने ने अपना बंद बंद तोड़ डाला था और उस का रुआं, रुआं, मुंह खोले वर्षा की बूंद का प्रतीक्षित था। अंजना की आंखें बन्द थीं लेकिन उस के ओठ खुले थे और उन में दांतों की लड़ी नज़र आ रही थी और उस के बाल बिखर-बिखर कर माथे पर आ रहे थे और राज ने पूछा, ये बिजलियां क्यों कड़क रही हैं, यह कंवारे बीज की बौछार किधर पड़ रही है। वह धरती के भीतर क्यों धंसता चला जा रहा है। एक हल की तरह—उस का श्वास रुकने लगा और उसने ज़ोर से अंजना को अपनी छाती से सटा लिया।

उसी समय उसके दादा की आवाज़ ज़ोर से गूंजी "नठिया ओए-ए बहल कर ला ओए-ए, रोटी राजू आ आ-आ।"

आवाज़ चीख़ती-चीख़ती, गूंजती-गूंजती, गरजती-गरजती उसके अनुभवों की तहों को चीरती-फाड़ती भीतर चली आई। एकाएक उसने अंजना को अपने आप से अलग कर दिया और खाना लेकर भाग गया। अंजना देर तक खड़ी रही, फिर वहीं हरियाली पर गिर कर हांफने लगी। उसका हृदय बैठा जा रहा था। उसे चक्कर आ रहे थे। धरती-आकाश घूम रहे थे और घूमते हुए दायरों के बीच में शहनाई का संगीत था जो ऊँचे से ऊँचा होता चला जा रहा था। उस ने एक तरेड़ी तोड़ी और उसे दांतों तले दबाकर कचर-कचर खाने लगी। राज ने उसे मुड़कर देखा। वह वहीं बैठी थी। आगे जाकर वह फिर मुड़ा। वह वहीं बैठी थी और जब वह दादा को खाना खिला कर लौटा, वह वहीं बैठी थी।

और फिर राजसिंह को वह सुन्दर तीन महीने याद आये जो अब धुंधलके में फैल कर एक ही क्षण बन गये थे—जब वह और अंजना अपने यौवन का पहला प्रेम लिये खेतों में घूमते थे। चांदनी में नहाते थे। सायों में, घाटियों की ओट में, वर्षा की बौछार में एक दूसरे से मिलते थे, जब हर समय किसी के निकट रहना कितना भला लगता है। जब एक दूसरे के श्वास और पसीने से भी इतर की सुगन्धि आती है। जब अनुभव सेराब नहीं होता लेकिन सेराब होने लगता है और एक दूसरे को देखकर वातावरण में कलियां सी खिलने लगती हैं और फूलों के शगूफ़े फैलते-फैलते सारे वायुमण्डल को घेर लेते हैं और उनके बीच में केवल दो हृदय धड़कते रह जाते हैं। जब संसार सिमटते-सिमटते एक दृष्टि बन जाता है और फिर वह दृष्टि फैलते-फैलते सारा वायुमण्डल बन जाती है। और उस दृष्टि के आगे पीछे, ऊपर नीचे, इधर उधर कुछ नहीं होता, अनुभव की सर्वव्यापकता, अपने सौंदर्य के अथाह फैलाव में हर वस्तु को डबो देती है।

वह क्षण कितना सुन्दर था। अब भी उसकी याद आने से राज का श्वास रुकने लगता। जब वह दूर, ऊपर गांव से बहुत दूर उधर डाब में नंगे नहाते थे और एक दूसरे के शरीर को आश्चर्य से देखते के देखते रह जाते थे। कितनी पवित्रता थी उन शरीरों में—सुन्दरता पर तोलती हुई, शक्ति पर खोले हुए। और फिर, जैसे सुन्दरता अपनी ही सुन्दरता के बोझ से एक फलदार टहनी की तरह झुक जाये, बस इसी प्रकार अंजना की नज़रें झुक गई थीं। उन नज़रों में निर्लज्जता नहीं थी, पाप का अनुभव भी न था, एक गहरी पवित्रता और सतीत्व और भरोसा जिसका अंशमात्र भी उसने उन फ़लस्तीनी लड़कियों में न देखा था। 'सुन्दरता' के साथ वह अक्सर समुद्र के तट पर नहाया करता था और उसे ईरान, बग़दाद, मिश्र, फ़लस्तीन और इटली की अपनी प्रेम-कथायें याद आईं—लेकिन वे इस समय क्यों याद आईं? वे तो वायु में उड़ जाने वाले तिनकों से अधिक महत्त्व न रखती थीं।

उन की अपवित्रता से उसकी आत्मा को कोई सरोकार न था। वह आज से कई वर्ष पूर्व की पवित्रता प्राप्त करके कपास के खेतों में खड़ा था और उसकी नज़रों में अंजना हँस रही थी।

अंजना हँस रही थी और उसे इशारों में बुला रही थी। घाटी के ऊपर......

ओ जवान ओए-ए—घर आ जा।

आवाज़ गूंजी, लड़की घाटी के ऊपर खड़ी हाथ हिला रही थी।

चन वीरा ओए-ए-ए-मैं आ आई।

लड़की घाटी से नीचे उतरने लगी। दौड़ते-दौड़ते, वह नीचे की ओर आ रही थी। अब वह ढलान में आ गई और अब वह उसकी छाती से लिपट गई थी।

"मेरे वीरा चन" (मेरे चांद ऐसे भाई)।

और राजसिंह ने अपनी छोटी बहन को ज़ोर से अपने गले से लिपटा लिया और उसके माथे को चूमने लगा। घर की चारदीवारी उस के चारों ओर फैल गई और उस ने किंचित दुःख भरे स्वर में कहा "मेरी नन्हीं बहन! चंचल कमलो, तू कितनी बड़ी हो गई है, मैंने तुझे पहचाना भी नहीं।"

"बहल कर ओए नठिया! घर आ जा।" दादा बुला रहे थे और हाली और सारा गांव ऊपर घाटी पर एकत्रित था और आकाश उनके पीछे था और बादल उनके सिरों पर उड़ रहे थे और सूरज की गरम-गरम प्यारी-प्यारी धूप चारों ओर फैली हुई थी और धरती चारों ओर से उसे बुला रही थी—घर आजा बेटा घर आजा।

राजसिंह ने कमलो का हाथ पकड़ा और वे दोनों खेतों में दौड़ते गये और घाटी के ऊपर चढ़ने लगे और जब वह घाटी के ऊपर चढ़ गये तो गांव वालों ने राजसिंह को गले से लगा लिया और ढोल बजने लगे और किसान नाचने लगे।

इतनी दूर घाटी के ऊपर वे लोग खिलौने की तरह हल्के फुल्के मालूम हो रहे थे और ऊपर सूरज मुस्करा रहा था और नीचे धरती अपने बेटों को प्रसन्न देखकर फूली न समाती थी और टेढ़े-मेढ़े खेतों में कपास के फूल समुद्र बन गये थे और उनके किनारे-किनारे सन के सुनहले फूलों की झालर थी।

और दूर सुहासे के स्टेशन पर कोई रेलगाड़ी कूकती हुई आकर रुकी और उसकी सीटी की मद्धम आवाज़ निद्रापन लिये हुए उस घाटी के वातावरण में एक अपरिचित संगीत की तरह बिखर-बिखर गई।

: ८ :

कालू भंगी

मैंने इससे पहले हज़ार बार कालू भंगी के बारे में लिखना चाहा है लेकिन मेरी कलम हर बार यह सोच कर रुक गई है कि कालू भंगी के सम्बंध में लिखा ही क्या जा सकता है ? भिन्न-भिन्न कोणों से मैंने उसके जीवन को देखने, परखने, समझने की कोशिश की है, लेकिन कहीं वह टेढ़ी रेखा दिखाई नहीं देती जिस से कोई दिलचस्प कहानी बन सकती हो। दिलचस्प होना तो एक ओर, कोई सीधी-सादी फीकी रूखी कहानी भी तो नहीं लिखी जा सकती कालू भंगी के सम्बंध में। फिर न जाने क्या बात है, हर कहानी को आरंभ करते हुए मेरे मस्तिष्क में कालू भंगी आ खड़ा होता है और मुझ से मुस्करा कर पूछता है:—

"छोटे साहेब, मुझ पर कहानी नहीं लिखोगे—कितने वर्ष हो गये हैं तुम्हें लिखते हुए ?"

"आठ वर्ष।"

"कितनी कहानियाँ लिखी हैं तुम ने ?"

"साठ और दो, बासठ।"

"मुझ में क्या बुराई है छोटे साहेब ! तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते ? देखो, कब से मैं उस कहानी की प्रतीक्षा में खड़ा हूँ। तुम्हारे मस्तिष्क के एक कोने में, एक समय से हाथ बांधे खड़ा हूं छोटे साहेब ! मैं तो तुम्हारा पुराना सेवक हूं—कालू भंगी। आखिर तुम मेरे बारे में क्यों नहीं लिखते ?"

और मैं कुछ उत्तर नहीं दे पाता। इतना सीधा-सपाट जीवन रहा है कालू भंगी का कि मैं उस के सम्बंध में कुछ भी तो नहीं लिख सकता। ऐसा नहीं है कि मैं उसके बारे में कुछ लिखना नहीं चाहता। वास्तव में बहुत देर से मैं कालू भंगी के सम्बंध में लिखने का विचार कर रहा हूं, परन्तु कभी लिख नहीं सका, हज़ार कोशिश के बावजूद नहीं लिख सका। इसलिए आज तक कालू भंगी अपनी पुरानी झाड़ू लिए, अपने बड़े-बड़े नंगे घुटने लिए, अपने फटे-फटे खुरदरे, बेढंगे पांव लिए, अपनी सूखी टांगों पर उभरी दरीदें लिए, अपने कूल्हों की उभरी-उभरी हड्डियां लिए, अपने भूखे पेट और उसकी सूखी चमड़ी की काली सलवटें लिए, अपनी मुर्झाई हुई छाती पर धूल से अटे बालों की झाड़ियाँ लिए, अपने सिकुड़े-सिकुड़े ओठों, फैले-फैले नथनों, झुर्रियों भरे गाल और अपनी आंखों के अंधकारमय गढ़ों के ऊपर नंगी चिंदिया उभारे मेरे मस्तिष्क के कोने में खड़ा है। अब तक कई पात्र आये और अपनी जीवनियाँ बता कर, अपना महत्व जता कर चले गये। सुन्दर स्त्रियाँ, सुन्दर काल्पनिक मूर्तियां, शैतान के चेहरे, इस मस्तिष्क के रंग-रोग़न से परिचित हुए। इसकी चारदीवारी में अपने दीपक जला कर चले गये लेकिन कालू भंगी बराबर अपनी झाड़ू संभाले उसी तरह खड़ा रहा। उसने उस घर के भीतर आने वाले प्रत्येक पात्र को देखा है। उसे रोते हुए, गिड़गिड़ाते हुए, प्रेम करते हुए, घृणा करते हुए, सोते हुए, जागते हुए, क़हक़हे लगाते हुए, व्याख्यान देते हुए, जीवन के हर रंग में, हर सतह पर, हर मंजिल में देखा है। बचपन से बुढ़ापे और बुढ़ापे से मृत्यु तक, उसने हर अपरिचित को इस घर के दरवाज़े के भीतर झांकते हुए देखा है। और उसे भीतर आते देख कर उस के लिए रास्ता साफ़ कर दिया है। वह स्वयं परे हट गया है, एक भंगी की तरह हट कर खड़ा हो गया है; यहां तक की कथा आरंभ होकर समाप्त भी हो गई है, यहां तक कि पात्र और दर्शक दोनों विदा हो गये हैं लेकिन कालू भंगी उसके बाद

भी वहीं खड़ा है। अब केवल एक पग उस ने आगे बढ़ा लिया है और मस्तिष्क के बीच में आगया है ताकि मैं उसे अच्छी तरह देख लूं। उस की नंगी चिंदिया चमक रही है। ओठों पर एक मूक प्रश्न है। एक समय से मैं उसे देख रहा हूं। समझ में नहीं आता क्या लिखूंगा इस के बारे में। लेकिन आज यह भूत ऐसे नहीं मानेगा। इसे कई वर्षों तक टाला है, आज इसे भी विदा कर दें......!

× × ×

मैं सात वर्ष का था जब मैं ने पहली बार कालू भंगी को देखा। उस के बीस वर्ष बाद, जब वह मरा, मैं ने उसे उसी हालत में देखा। कोई फ़र्क न था, वही घुटने, वही पांव, वही रङ्गत, वही चेहरा, वही चिंदिया, वही टूटे हुए दांत, वही झाड़ू, जो मालूम होता था मां के पेट से उठाये चला आरहा है। कालू भंगी की झाड़ू उस के शरीर का एक अंग लगती थी। वह प्रतिदिन रोगियों का मल-मूत्र साफ़ करता था, डिस्पैन्सरी में फिनाइल छिड़कता था, फिर डाक्टर साहब और कम्पौंडर साहब के बगंलों की सफ़ाई का काम करता था। कम्पौंडर साहब की बकरी को और डाक्टर साहब की गाय को चराने के लिए जंगल में ले जाता और दिन ढलते ही उन्हें वापस अस्पताल ले आता और उन्हें थान पर बांध कर अपना खाना तय्यार करता और उसे खा कर सो जाता। बीस वर्ष से मैं उसे यही काम करते हुए देख रहा था। प्रतिदिन, नियम-पूर्वक। इस बीच में वह कभी एक दिन के लिये भी बीमार नहीं हुआ। यह बात आश्चर्यजनक अवश्य थी, लेकिन इतनी भी नहीं कि केवल इसी के लिये एक कहानी लिखी जाय। ख़ैर, यह कहानी तो ज़बरदस्ती लिखवाई जा रही है। आठ वर्ष से मैं इसे टालता आया हूँ लेकिन यह व्यक्ति नहीं मानता, ज़बरदस्ती से काम ले रहा है। यह अत्याचार मुझ पर भी है और आप पर भी। मुझ पर इस

लिये कि मुझे लिखना पड़ रहा है, आप पर इसलिये कि आपको इसे पढ़ना पड़ रहा है। यद्यपि इस में ऐसी कोई बात है ही नहीं जिसके लिये इतनी सिरदर्दी मोल ली जाय। लेकिन क्या किया जाय, कालू भङ्गी की मौन दृष्टि के भीतर एक ऐसा विनय निहित है, एक ऐसी विवश मूकता, ऐसी गहराई है कि मुझे उसके बारे में लिखना पड़ रहा है और लिखते-लिखते यह भी सोचता हूँ कि उसके जीवन के सम्बन्ध में क्या लिखूंगा। कोई पहलू भी तो ऐसा नहीं जो दिलचस्प हो, कोई कोना ऐसा नहीं जो अन्धकारमय हो, कोई कोण ऐसा नहीं जो चुम्बक जैसा आकर्षण रखता हो, फिर न जाने क्यों वह आठ वर्ष से बराबर मेरे मस्तिष्क में खड़ा है। इस में उसकी हठधर्मी के अतिरिक्त और तो कुछ नज़र नहीं आता। जब मैंने 'आंगी' की कहानी में चाँदनी के खलिहान सजाये थे और 'यरकानियत' के रोमांचकारी कोण से संसार को देखा था, उस समय भी यह यहीं खड़ा था। जब मैंने रोमांच से आगे पग बढ़ाये और 'हुस्न और हैवान' की रंगबिरंगी दशाएँ देखता हुआ 'टूटे हुए तारों' को छूने लगा। उस समय भी यह यहीं खड़ा था। जब मैंने 'बालकोनी' से झांक कर अन्नदाताओं की निर्धनता देखी और पञ्जाब की धरती पर खून की नदियां बहती देखकर अपने वहशी होने का ज्ञान प्राप्त किया, उस समय भी यह मेरे मस्तिष्क के दरवाज़े पर खड़ा था। चुप चाप, बिना हिले-डुले। मगर अब यह अवश्य जायगा। अब इसे जाना ही होगा। अब मैं इसके बारे में लिख रहा हूँ। भगवान् के लिये इसकी नीरस, फीकी सी कहानी भी सुन लीजिये ताकि यह यहां से दूर दफ़न हो जाय और मुझे इसकी गंदी सङ्गत से छुटकारा मिल जाये और यदि आज भी मैंने इसके बारे में न लिखा और न आपने इसे पढ़ा तो यह आठ वर्ष बाद भी यहीं जमा रहेगा और संभव है जीवन भर यहीं खड़ा रहे।

लेकिन परेशानी तो यह है कि इसके सम्बन्ध में लिखा क्या जा सकता है ? कालू भङ्गी के मां बाप भङ्गी थे और जहां तक मेरा विचार

है इसके सब पूर्वज भङ्गी थे, और सैंकड़ों वर्ष से यहीं रहते चले आये थे। इसी तरह, इसी दशा में। फिर कालू भङ्गी ने शादी न की थी, उस ने कभी प्रेम न किया था, उसने कभी दूर का सफ़र न किया था, आश्चर्य तो यह है कि वह कभी अपने गांव से बाहर नहीं गया था। यह दिन भर अपना काम करता और रात को सो जाता और प्रातः उठ कर फिर अपने काम में जुट जाता। बचपन ही से वह इसी प्रकार करता चला आया था।

हां, कालू भङ्गी में एक बात अवश्य दिलचस्प थी और वह यह कि उसे अपनी नङ्गी चिंदिया पर किसी जानवर, जैसे गाय या भैंस की जिह्वा फिराने से बड़ा आनन्द मिलता था। प्रायः दोपहर के समय मैंने उसे देखा है कि नीले आकाश तले, हरी घास के मख़मल जैसे फ़र्श पर, खुली धूप में वह अस्पताल के पास के एक खेत की मेंढ़ पर उकड़ूं बैठा है और गाय उसका सिर चाट रही है बार-बार। और वह वहीं अपना सिर चटवाते-चटवाते ऊंघ-ऊंघ कर सो गया है। उसे इस प्रकार सोते देखकर मेरे हृदय में प्रसन्नता का एक विचित्र सा भाव उजागर होने लगता था और विश्व के थके-थके, स्वप्निल सौंदर्य का भ्रम होने लगता था। मैंने अपने छोटे से जीवन में संसार की सुन्दर-तम स्त्रियां, नवजात कलियां, संसार के सुन्दरतम दृश्य देखे हैं, लेकिन न जाने क्यों ऐसी सरलता, ऐसा सौंदर्य, ऐसी शान्ति किसी दृश्य में नहीं देखी। जब मैं सात वर्ष का था और वह खेत बहुत बड़ा और विस्तृत दिखाई देता था और आकाश बहुत नीला और निर्मल और कालू भङ्गी की चिंदिया शीशे की तरह चमकती थी; और गाय की जिह्वा धीरे-धीरे उसकी चिंदिया चाटती हुई, जैसे उसे सहलाती हुई, कुसर-कुसर का स्वप्निल स्वर उत्पन्न करती जाती थी। जी चाहता था मैं भी उसी तरह अपना सिर घुटा कर उस गाय के नीचे बैठ जाऊँ और ऊँघता-ऊँघता सो जाऊँ। एक बार मैंने ऐसा करने की कोशिश भी की तो पिता जी ने मुझे वह पीटा, वह पीटा; और मुझ से अधिक कालू भङ्गी

को वह पीटा कि मैं भय से चीख़ने लगा कि कालू भङ्गी उनकी ठोकरों से मर न जाय, लेकिन कालू भङ्गी को इतनी मार खाकर भी कुछ न हुआ, दूसरे दिन वह नियमानुसार झाड़ू देने के लिये हमारे बंगले में मौजूद था।

कालू भंगी को जानवरों से बड़ा लगाव था, हमारी गाय तो उस पर जान छिड़कती थी और कम्पौंडर साहब की बकरी भी। यद्यपि बकरी बड़ी बेवफ़ा होती है, नारी से भी अधिक, लेकिन कालू भंगी की बात और थी। उन दोनों पशुओं को पानी पिलाये तो कालू भंगी, चारा खिलाये तो कालू भंगी, जंगल में चराने ले जाये तो कालू भंगी। वे उसके एक-एक संकेत को इस प्रकार समझ जातीं जैसे कोई व्यक्ति किसी मनुष्य के बच्चे की बातें समझता है। मैं कई बार कालू भंगी के पीछे गया हूं, जंगल के रास्ते में वह उन्हें बिल्कुल खुला छोड़ देता था लेकिन फिर भी गाय और बकरी दोनों उसके साथ कदम से कदम मिलाये चले आते थे—जैसे तीन मित्र सैर करने निकले हों। रास्ते में गाय ने हरी घास देख कर मुँह मारा तो बकरी भी झाड़ी से पत्तियां खाने लगी और कालू भंगी है कि सुम्बलू तोड़-तोड़ कर खा रहा है और बकरी के मुँह में डाल रहा है, और स्वयं भी खा रहा है; और आप ही आप बातें कर रहा है और उन से भी बराबर बातें किये जा रहा है और वे दोनों पशु भी गुर्रा कर, कभी कान फटफटा कर, कभी पांव हिला कर, कभी दुम दबा कर, कभी नाच कर, कभी गा कर, हर प्रकार से उसकी बातों में भाग ले रहे हैं। अपनी समझ में तो कुछ न आता था कि ये लोग क्या बातें करते थे। फिर कुछ क्षणों के बाद कालू भंगी आगे चलने लगता तो गाय भी चरना छोड़ देती और बकरी भी झाड़ी से परे हट जाती और कालू भंगी के साथ-साथ चलने लगती। आगे कहीं छोटी-सी नदी आती या कोई नन्हा-सा चश्मा तो कालू भंगी वहीं बैठ जाता, बल्कि लेट कर वहीं चश्मे के स्तर से अपने ओठ मिला देता और पशुओं की तरह पानी

पीने लगता; और उसी प्रकार वे दोनों पशु भी पानी पीने लगते क्योंकि बेचारे मनुष्य तो थे नहीं कि ओक से पी सकते। उसके बाद यदि कालू भंगी घास पर लेट जाता तो बकरी भी उसकी टांगों के पास अपनी टांगें सिकोड़ कर प्रार्थना करने के-से ढंग पर बैठ जाती, और गाय तो इस प्रकार उसके निकट ही बैठती कि मुझे मालूम होता कि वह कालू भंगी की पत्नी है और अभी-अभी खाना पका कर हटी है। उसकी हर नज़र में, और चेहरे के हर उतार-चढ़ाव में एक शांति-पूर्ण गृहस्थी-जीवन झलकने लगता और जब वह जुगाली करने लगती तो मुझे मालूम होता जैसे कोई बड़ी सुघड़ पत्नी करोशिया लिए कशीदाकारी कर रही है, या कालू भंगी के लिए स्वैटर बुन रही है।

इस गाय और बकरी के अतिरिक्त एक लंगड़ा कुत्ता था जो कालू भंगी का बड़ा घनिष्ट मित्र था। वह लंगड़ा था इस कारण ही अन्य कुत्तों के साथ अधिक चल-फिर न सकता था और इसी कारण प्रायः अन्य कुत्तों से पिटता और भूखा रहता, और घायल रहता था। कालू भंगी प्रायः उसकी मरहमपट्टी और पालन-पोषण में लगा रहता। कभी तो उसे साबुन से नहलाता, कभी उसकी चिचड़ियां दूर करता और कभी उसे मक्की की रोटी का सूखा टुकड़ा देता; लेकिन यह कुत्ता बड़ा स्वार्थी था। दिन में केवल दो बार कालू भंगी से मिलता, दोपहर को और शाम को। और खाना खा कर और घावों पर मरहम लगवा कर फिर घूमने के लिए चल देता। कालू भंगी और उस लंगड़े कुत्ते की मुलाक़ात बड़ी संक्षिप्त होती थी, लेकिन बड़ी दिलचस्प। मुझे तो वह कुत्ता एक आंख न भाता था लेकिन कालू भंगी उसे बड़े आदर से मिलता।

उसके अतिरिक्त कालू भंगी का जंगल के हर पशु-पक्षी से परिचय था। रास्ते में उसके पांव तले कोई कीड़ा आ जाता तो वह उसे उठा

कर झाड़ी पर रख देता। कहीं कोई नेवला बोलने लगता तो वह उसकी बोली में उसका उत्तर देता। तीतर, रतगल्ला, गुटारी, लाल चिड़ा हर पक्षी की बोली वह जानता था। इस दृष्टि से वह राहुल सांकृत्यायन से भी बड़ा पण्डित था। कम से कम मेरे जैसे सात वर्ष के बालक की दृष्टि में तो वह मुझे अपने माता-पिता से भी अच्छा मालूम होता था; और फिर वह मक्की का भुट्टा ऐसा मज़ेदार तैयार करता था और उसे इस तरह हल्की आंच पर भूनता था जैसे वह वर्षों से उस भुट्टे को जानता हो। एक मित्र की तरह वह भुट्टे से बातें करता। इस नरमी और प्यार से उससे पेश आता जैसे वह भुट्टा उस का अपना सम्बन्धी या सगा भाई हो। और लोग भी भुट्टा भूनते थे लेकिन वह बात कहां। ऐसे कच्चे बेस्वाद और मामूली से भुट्टे होते थे वे कि उन्हें बस मक्की का भुट्टा ही कहा जा सकता था, लेकिन कालू भंगी के हाथों में पहुँच कर वही भुट्टा कुछ का कुछ हो जाता; और जब वह आग पर सिक कर बिल्कुल तय्यार हो जाता तो बिल्कुल एक नई नवेली दुल्हन की तरह, शादी का जोड़ा पहने, सुनहला-सुनहला चमकता नज़र आता। मेरे ख्याल में स्वयं भुट्टे को यह अनुमान हो जाता था कि कालू उससे कितना प्रेम करता है, अन्यथा प्रेम के बिना उस निर्जीव वस्तु में इतनी सुन्दरता कैसे उत्पन्न हो सकती थी। मुझे कालू भंगी के हाथ के सिके हुए भुट्टे खाने में बड़ा आनन्द आता था और मैं उन्हें बड़े मज़े में छुप-छुप कर खाता था। एक बार पकड़ा गया तो बड़ी ठुकाई हुई। बेचारा कालू भी पिटा, लेकिन दूसरे दिन वह फिर बंगले पर झाड़ू लिए उसी तरह हाज़िर था।

और बस कालू भंगी के सम्बंध में और कोई दिलचस्प बात याद नहीं आ रही। मैं बचपन से जवानी में आया और कालू भंगी वैसे का वैसा रहा। मेरे लिए अब वह कम दिलचस्प हो गया था, बल्कि

यों कहिये कि मुझे उससे किसी प्रकार की दिलचस्पी न रही थी। हां, कभी-कभी उसका व्यक्तित्व मुझे अपनी ओर खैंचता। यह उन दिनों की बात है जब मैंने नया-नया लिखना शुरू किया था। मैं अध्ययन के लिए उससे प्रश्न करता और नोट लेने के लिए फाऊनटेन पैन और पैड साथ रख लेता।

"कालू भंगी! तुम्हारे जीवन में कोई ख़ास बात है?"

"कैसी छोटे साहब?"

"कोई ख़ास बात, अजीब, अनोखी, नई।"

"नहीं छोटे साहब!" (यहाँ तक तो निरीक्षण कोरा रहा। अब आगे चलिए, संभव है......!"

"अच्छा, तुम यह बताओ, तुम तन्खाह लेकर क्या करते हो?" हम ने दूसरा सवाल पूछा।

"तन्खाह लेकर क्या करता हूँ?" वह सोचने लगता, "आठ रुपये मिलते हैं मुझे" वह फिर उंगलियों पर गिनने लगता "चार रुपये का आटा लाता हूं......एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला, कितने रुपये हो गये, छोटे साहब?"

"सात रुपये।"

"हां, सात रुपये! हर महीने एक रुपया बनिये को देता हूं कपड़े सिलवाने के लिए, उससे कर्ज़ लेता हूं ना? साल में दो जोड़े तो चाहियें। और छोटे साहब! कहीं बड़े साहब एक रुपया तन्खाह में बढ़ा दें तो मज़ा आ जाय।"

"वह कैसे?"

"घी लाऊँगा एक रुपये का और मक्की के पराठे खाऊँगा। कभी पराठे नहीं खाये मालिक! बड़ा जी चाहता है।"

अब बोलिए इन आठ रुपयों पर कोई क्या कहानी लिखे?

फिर जब मेरी शादी हो गई, जब रातें जवान और चमकीली

होने लगतीं और निकट के जंगल से शहद और कस्तूरी और जंगली गुलाब की लपटें आने लगतीं, और हिरन चौकड़ियां भरते हुए दिखाई देते, और तारे झुकते-झुकते कानों में खुसर-पुसर करने लगते, और किसी के रसीले ओठ, आने वाले चुम्बनों का ख्याल करके कांपने लगते। उस समय भी मैं कालू भंगी के सम्बंध में कुछ लिखना चाहता और पेन्सिल कागज़ लेकर उसके पास जाता।

"कालू भंगी, तुम ने ब्याह नहीं किया ?"

"नहीं छोटे साहब !"

"क्यों ?"

इस इलाके में मैं ही एक भंगी हूं और दूर-दूर तक कोई भंगी नहीं है छोटे साहब ! फिर हमारी शादी कैसे हो सकती है ?"

(लीजिये यह रास्ता भी बन्द हुआ)

"तुम्हारा जी नहीं चाहता कालू भंगी ?" मैंने दुबारा कोशिश कर के कुरेदना चाहा।

"क्या साहब ?"

"प्रेम करने को जी चाहता है तुम्हारा ? शायद किसी से प्रेम किया होगा तुम ने, जभी तुम ने अब तक शादी नहीं की।"

"प्रेम क्या होता है छोटे साहब ?"

"औरत से प्रेम करते हैं लोग।"

"प्रेम कैसे करते हैं साहब ? शादी तो ज़रूर करते हैं सब लोग। बड़े लोग प्रेम भी करते होंगे छोटे साहब ! लेकिन हमने नहीं सुना, वह जो कुछ आप कह रहे हैं। रही शादी की बात, वह मैंने आपको बता दी है। कैसे होती मेरी शादी आप बताइये ?"

(हम क्या बतायें ख़ाक ?)

"तुम्हें दुख नहीं है कालू भंगी ?"

"किस बात का दुख छोटे साहेब ?"

हार कर मैंने उसके सम्बंध में लिखने का विचार छोड़ दिया।

× × ×

आठ वर्ष हुए कालू भंगी मर गया। वह, जो कभी बीमार नहीं हुआ था, अचानक ऐसा बीमार पड़ा कि फिर कभी खाट से न उठा। उसे अस्पताल में दाख़िल कर लिया गया था। वह अलग वार्ड में रहता था। कम्पौंडर दूर से उसके कंठ में दवा उंडेल देता और एक चपरासी उसके लिये खाना रख आता। वह अपने बरतन स्वयं साफ़ करता, अपना बिछौना स्वयं बिछाता, अपना मल-मूत्र स्वयं साफ़ करता और जब वह मर गया तो उसकी लाश को पुलिस वालों ने ठिकाने लगा दिया क्योंकि उसका कोई वारिस नहीं था। वह हमारे यहां बीस वर्ष से रहता था लेकिन हम कोई उसके सम्बन्धी थोड़े थे, इसलिये उसका अन्तिम वेतन भी सरकार ने ज़ब्त कर लिया क्योंकि उसका कोई वारिस नहीं था। और जब वह मरा उस दिन भी कोई विशेष बात न हुई। प्रति दिन की तरह उस दिन भी अस्पताल खुला। डाक्टर साहब ने नुस्ख़े लिखे, कम्पौंडर ने तैयार किये, रोगियों ने दवा ली और घर लौट गये। फिर रोज़ की तरह अस्पताल भी बन्द हुआ और घर आकर हम सबने आराम से खाना खाया। रेडियो सुना और लिहाफ़ ओढ़कर सो गये। प्रातः उठे तो पता चला कि पुलिस वालों ने दयाभाव से कालू भंगी की लाश ठिकाने लगा दी, इस पर डाक्टर साहब की गाय ने और कम्पौंडर साहब की बकरी ने दो दिन तक न कुछ खाया न कुछ पीया, और वार्ड के बाहिर खड़े-खड़े बेकार चिल्लाती रहीं। पशुओं की जाति थी ना आखिर!

× × ×

अरे तू फिर झाड़ू लेकर आ पहुँचा ? आखिर तू चाहता क्या है, बता ?

कालू भंगी अभी तक वहां खड़ा है।

क्यों भई अब तो मैंने सब कुछ लिख दिया—वह सब कुछ जो मैं तुम्हारे सम्बन्ध में जानता हूँ। अब भी यहीं खड़े परेशान कर रहे हो, भगवान् के लिये चले जाओ। क्या मुझ से कुछ छूट गया है, कोई भूल हो गई है ? तुम्हारा नाम कालू, पेशा भंगी, इस इलाक़े से कभी बाहिर नहीं गये, विवाह नहीं किया, प्रेम नहीं किया, जीवन में कोई विशेष घटना नहीं, कोई अचंभा नहीं—जैसे प्रेमिका के ओठों में होता है, अपने बच्चे के प्यार में होता है, ग़ालिब के काव्य में होता है। कुछ भी तो नहीं हुआ तुम्हारे जीवन में ! फिर मैं क्या लिखूं—और क्या लिखूं। तुम्हारा वेतन आठ रुपये, चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला, सात रुपये और एक रुपया बनिये का--आठ रुपये हो गये। लेकिन आठ रुपये में कहानी नहीं होती, आज-कल तो पच्चीस, पचास, सौ में कहानी नहीं होती लेकिन आठ रुपये में तो कोई कहानी हो ही नहीं सकती। फिर मैं तुम्हारे बारे में क्या लिख सकता हूं ? अब खिलजी ही को लो, अस्पताल में कम्पौंडर है, बत्तीस रुपये वेतन पाता है, पुरखाओं में निचले मध्यम वर्ग के मां-बाप मिले थे, जिन्होंने मिडिल तक पढ़ा दिया। फिर खिलजी ने कम्पौंडरी की परीक्षा पास कर ली। वह जवान है, उसके चेहरे पर रंगत है। यह जवानी, यह रंगत कुछ चाहती है। वह श्वेत लट्ठे की सलवार पहिन सकता है, क़मीज़ पर कलफ़ लगा सकता है। बालों में सुगन्धित तेल लगाकर कंघी कर सकता है। सरकार ने उसे रहने के लिये एक छोटा सा क्वार्टर भी दे रखा है। डाक्टर चूक जाय तो फ़ीस भी झाड़ लेता है और सुन्दर रोगिनियों से प्रेम भी कर लेता है। वह नूरां और खिलजी की घटना तुम्हें याद होगी। नूरां 'भीता' से

आई थी, सोलह-सत्रह वर्ष की अल्हड़ जवानी, चार कोस से ही सिनेमा के रङ्गीन विज्ञापन की तरह नज़र आ जाती थी। बड़ी मूर्ख थी वह। अपने गांव के दो नौजवानों का प्रेम पाए बैठी थी। जब नम्बरदार का लड़का सामने आ जाता तो उसकी हो जाती और जब पटवारी का लड़का दिखाई देता तो उसका मन उधर मुड़ने लगता। और वह कोई निश्चय ही न कर पाती। अधिकतर लोग प्रेम को एक बिल्कुल स्पष्ट और निश्चित बात मानते हैं यद्यपि वास्तव में यह बिल्कुल अनिश्चित और असमंजस की हालत लिये होता है अर्थात् प्रेम उस से भी है, इस से भी है; और फिर शायद कहीं नहीं है, और है भी तो ऐसा सामयिक कि इधर नज़र चूकी, उधर प्रेम ग़ायब। सचाई अवश्य होती है लेकिन स्थिरता नहीं होती। इसीलिये तो नूरां कोई निश्चय न कर पाती थी। उसका हृदय नम्बरदार के बेटे के लिये भी धड़कता था और पटवारी के पूत के लिये भी। उसके ओठ लम्बरदार के बेटे के ओठों से मिल जाने के लिये बेचैन हो उठते, और पटवारी के पूत की आँखों में आँखें डालते ही उसका हृदय यूं कांपने लगता जैसे चारों ओर समुद्र हो, चारों ओर लहरें हों, और एक अकेली नाव हो; और नाज़ुक सी पतवार हो और चारों ओर कोई न हो और नाव डोलने लगे, हौले-हौले डोलती जाय और नाज़ुक सी पतवार नाज़ुक से हाथों में चलती-चलती थम जाए और श्वास रुकते-रुकते रुक-सा जाय, और आंखें झुकते-झुकते झुक-सी जायें और केश बिखरते-बिखरते बिखर-से जायें, और लहरें घूम-घूम कर घूमती हुई मालूम हों, और बड़े-बड़े दायरे फैलते-फैलते फैल जायें, और फिर चारों ओर सन्नाटा फैल जाय, और हृदय एक दम धक् से रह जाय, और कोई अपनी बाहों में भींच ले। हाय! पटवारी के बेटे को देखने से ऐसी हालत होती थी नूरां की और वह कोई निश्चय न कर पाती थी। नम्बरदार का बेटा, पटवारी का बेटा, पटवारी का बेटा; नम्बरदार का बेटा। वह दोनों को वचन दे चुकी थी, दोनों से शादी करने का

इक़रार कर चुकी थी। दोनों पर मर मिटी थी। परिणाम यह हुआ कि वे आपस में लड़ते-लड़ते लहूलुहान हो गये और जब जवानी का बहुत सा लहू रगों से निकल गया तो उन्हें अपनी मूर्खता पर बहुत क्रोध आया; और पहले नम्बरदार का बेटा नूरां के पास पहुँचा और अपनी छुरी से उसका वध करना चाहा, और नूरां की भुजा पर घाव आये और फिर पटवारी का पूत आया और उसने उसकी जान लेनी चाही, और नूरां के पांव पर घाव आये परन्तु वह बच गई, क्योंकि वह समय पर अस्पताल लाई गई थी और यहां उस की चिकित्सा शुरू हो गई। आख़िर अस्पताल वाले भी मनुष्य होते हैं। सुन्दरता दिलों पर प्रभाव डालती है, इंजैक्शन की तरह, उसका थोड़ा-बहुत प्रभाव अवश्य होता है। किसी पर कम, किसी पर अधिक। डाक्टर साहब पर कम था, कम्पौंडर पर अधिक था। खिलजी नूरां की सेवा में तन-मन से लगा रहा। नूरां से पहले बेगमां, बेगमां से पहले रेशमां और रेशमां से पहले जानकी के साथ भी ऐसा ही हुआ थां, लेकिन वह खिलजी के असफल प्रेम थे, क्योंकि वे औरतें ब्याही हुई थीं। रेशमां का तो एक बच्चा भी था, बच्चों के अतिरिक्त माता-पिता थे, और पति थे; और पतियों की दुश्मन नज़रें थीं जो जैसे खिलजी की छाती में घुस कर उसकी आकांक्षाओं के अंतिम कोने तक पहुंच जाना चाहती थीं। खिलजी क्या कर सकता था? विवश हो कर रह जाता। उसने बेगमां से प्रेम किया, रेशमां और जानकी से भी। वह प्रतिदिन बेगमां के भाई को मिठाई खिलाता था। रेशमां के नन्हें से बेटे को दिन भर उठाये फिरता था। जानकी को फूलों से बड़ा प्रेम था। वह प्रतिदिन प्रातः उठ कर मुँह-अंधेरे जंगल की ओर चला जाता और सुन्दर लाला के गुच्छे तोड़ कर उसके लिए लाता। सर्वोत्तम औषधियां, सर्वोत्तम खाने, सर्वोत्तम देख-भाल, लेकिन समय आने पर जब बेगमां अच्छी हुई तो रोते-रोते अपने पति के साथ चली गई; और जब रेशमां अच्छी हुई तो अपने बेटे को लेकर चली गई; और जानकी अच्छी हुई तो

चलते समय उसने खिलजी के दिये हुए फूल अपनी छाती से लगाये, उसकी आँखें भर आईं और फिर उसने अपने पति का हाथ थाम लिया और चलते-चलते घाटी की ओट में ग़ायब हो गई। घाटी के अंतिम छोर पर पहुंच कर उसने मुड़ कर खिलजी की ओर देखा और खिलजी मुँह फेर कर वार्ड की दीवार के सहारे से लग कर रोने लगा। रेशमां के विदा होते समय भी वह उसी प्रकार रोया था। बेगमां के जाते समय भी उसी प्रकार, उसी दुख के वशीभूत हो कर रोया था लेकिन खिलजी के लिए न रेशमां रुकी, न बेगमां, न जानकी; और अब कितने वर्षों के बाद नूरां आई थी और उसका हृदय उसी प्रकार धड़कने लगा था, और यह धड़कन दिन-प्रतिदिन बढ़ती चली जाती थी। शुरू-शुरू में तो नूरां की हालत बुरी थी, उसका बचना कठिन था, लेकिन खिलजी की अनथक कोशिशों से घाव भरते चले गए, पीप कम होती गई, दुर्गन्ध दूर होती गई, सूजन गायब होती गई। नूरां की आंखों में चमक और उसके सफ़ेद चेहरे पर स्वास्थ्य की लालिमा आती गई; और जिस दिन खिलजी ने उसकी बाहों की पट्टी उतारी तो नूरां विनय-भाव के वशीभूत हो उसकी छाती से लिपट कर रोने लगी, और जब उसके पाँव की पट्टी उतरी तो उसने अपने हाथों और पांव में मेहंदी रचाई और आंखों में काजल लगाया, और बालों की लटें सवारीं तो खिलजी का हृदय प्रसन्नता से चौकड़ियां भरने लगा। नूरां खिलजी को दिल दे बैठी थी। उसने खिलजी से शादी का वायदा कर लिया था। नम्बरदार का बेटा और पटवारी का बेटा, दोनों बारी-बारी कई बार उसे देखने के लिए, उससे क्षमा मांगने के लिए, उससे शादी का वचन लेने के लिए अस्पताल आये थे, और नूरां उन्हें देख कर हर बार घबरा कर कांपने लगती, मुड़-मुड़ कर देखने लगती और उस समय तक उसे चैन न पड़ता जब तक कि वे लोग चले न जाते; और खिलजी उसके हाथ को अपने हाथ में न ले लेता। और जब वह बिल्कुल अच्छी हो गई तो सारा गांव, उसका अपना गांव उसे देखने

खिड़की बन्द करता रहा और अंगीठी में लकड़ियां जलाता रहा, ताकि जानकी को शीत न लगे।

(६) कालू भंगी नूरां का पाखाना उठाता रहा—तीस मास दस दिन तक।

कालू भंगी ने रेशमां को जाते हुए देखा, उसने जानकी को जाते हुए देखा, उसने नूरां को जाते हुए देखा, लेकिन वह कभी दीवार से लग कर नहीं रोया। वह पहले तो कुछ एक क्षणों के लिए हैरान हो जाता, फिर उसी आश्चर्य से अपना सिर खुजाने लगता और जब कोई बात उसकी समझ में न आती तो वह अस्पताल के नीचे खेतों में चला जाता और गाय से अपनी चिंदिया चटवाने लगता। परन्तु इसका वर्णन तो मैं पहले कर चुका हूँ, फिर और क्या लिखूँ तुम्हारे बारे में कालू भंगी? सब कुछ तो कह दिया जो कुछ कहना था, जो कुछ तुम रहे हो। तुम्हारा वेतन बत्तीस रुपया होता, तुम मिडिल पास या फेल होते, तुम्हें विरासत में कुछ सभ्यता, संस्कृति, कुछ थोड़ी-सी मानव-उल्लास और उस उल्लास का शिखर मिला होता तो मैं तुम्हारे सम्बन्ध में कोई कहानी लिखता। अब तुम्हारे आठ रुपये में मैं क्या कहानी लिखूँ। हर बार उन आठ रुपयों को उलट-फेर कर देखता हूँ। चार रुपये का आटा, एक रुपये का नमक, एक रुपये का तम्बाकू, आठ आने की चाय, चार आने का गुड़, चार आने का मसाला—सात रुपये और एक रुपया बनिये का। आठ रुपये हो गये। कालू भंगी, तुम्हारी कहानी कैसे बनेगी? तुम्हारी कहानी मुझ से न लिखी जायगी। चले जाओ, देखो, मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ।

× × ×

लेकिन यह मनहूस अभी तक यहीं खड़ा है। अपने उखड़े पीले-पीले गंदे दांत निकाले, अपनी फूटी हंसी हंस रहा है।

तू ऐसे नहीं जायेगा। अच्छा भई, अब मैं फिर अपनी स्मृतियों की राख कुरेदता हूँ। शायद तेरे लिए अब मुझे बत्तीस रुपयों से नीचे उतरना पड़ेगा और बख़्तियार चपड़ासी का सहारा लेना पड़ेगा। बख़्तियार चपड़ासी को पन्द्रह रुपये वेतन मिलता है, और जब कभी वह डाक्टर या कम्पौंडर या वैक्सीनेटर के साथ दौरे पर जाता है तो उसे डबल भत्ता और सफ़र खर्च भी मिलता है। फिर गांव में उसकी अपनी ज़मीन भी है, और एक छोटा-सा मकान भी, जिसके तीन ओर चीढ़ के ऊंचे-ऊंचे वृक्ष हैं और चौथी ओर एक सुन्दर-सा बागीचा है, जो उसकी पत्नी ने लगाया है। उसमें उसने कड़म का साग बोया है, और पालक, और मूलियां, और शलजम, और हरी मिरचें, और बड़ी इल्लें, और कद्दू—जो गरमियों की धूप में सुखाए जाते हैं और सरदियों में जब बरफ़ पड़ती है और हरियाली मर जाती है, तो खाये जाते हैं। बख़्तियार की पत्नी यह सब कुछ जानती है। बख़्तियार के तीन बच्चे हैं, उसकी बूढ़ी मां है जो सदैव अपनी बहू से झगड़ा करती रहती है। एक बार बख़्तियार की मां अपनी बहू से झगड़ा करके घर से चली गई थी। उस दिन आकाश पर गहरे बादल छाये हुए थे, और मारे पाले के दांत बज रहे थे और घर से बख़्तियार का बड़ा लड़का अम्मा के चले जाने की सूचना लेकर दौड़ता-दौड़ता अस्पताल आया था और बख़्तियार उसी समय अपनी मां को वापस लाने के लिए कालू भंगी को साथ लेकर चल दिया था। वह दिन-भर उसे जंगल में ढूंढ़ते रहे। वह और कालू भंगी और बख़्तियार की पत्नी, जो अपने किये पर पछता रही थी, अपनी सास को ऊँची आवाज़ें देने के साथ-साथ रोती जाती थी। आकाश पर बादल छाए हुए थे और सरदी से हाथ-पांव सुन्न हुए जाते थे और पांव तले चीढ़ के सूखे झूमर फिसले जाते थे। फिर वर्षा शुरू हो गई, फिर बर्फ़ पड़ने लगी और फिर चारों ओर गहरी चुप्पी छा गई, और जैसे एक गहरी मृत्यु ने अपने दरवाज़े खोल दिये हों, और बरफ़ की परियों को

पंक्ति में बाहर धरती पर भेज दिया हो, बरफ़ के गाले धरती पर गिरते गये, मौन, शांत, सफ़ेद मख़मल घाटियों, वादियों और चोटियों पर फैल गईं।

"अम्मां!" बख़तियार की पत्नी ज़ोर से चिल्लाई।

"अम्मां!" बख़तियार चिल्लाया।

"अम्मां!" कालू भंगी ने आवाज़ दी।

जंगल गूंज कर मौन हो गया।

फिर कालू भंगी ने कहा "मेरा ख़्याल है वह 'नक्कर' गई होगी तुम्हारे मामू के पास।"

नक्कर से दो कोस इधर उन्हें बख़तियार की अम्मा मिली। बरफ़ गिर रही थी और वह चली जा रही थी; गिरती, पड़ती, लुढ़कती, थमती, हांपती, कांपती, आगे बढ़ती चली जा रही थी, और जब बख़तियार ने उसे पकड़ा तो एक क्षण के लिए उसने प्रतिरोध किया, फिर वह उसकी बांहों में गिर कर मूर्छित हो गई और बख़तियार की पत्नी ने उसे थाम लिया, और रास्ता भर वह उसे बारी-बारी से उठाये चले आए—बख़तियार और कालू भंगी। और जब लोग वापस घर पहुँचे तो बिल्कुल अंधेरा हो चुका था और उन्हें वापस आते देख कर बच्चे रोने लगे और कालू भंगी एक ओर होकर खड़ा हो गया और अपना सिर खुजाने लगा, और इधर-उधर देखने लगा। फिर उसने धीरे से दरवाज़ा खोला और वहां से चला आया। हां, बख़तियार के जीवन में भी कहानियां हैं, छोटी-छोटी सुन्दर कहानियां लेकिन कालू भंगी! मैं तुम्हारे बारे में और क्या लिख सकता हूं? मैं अस्पताल के प्रत्येक व्यक्ति के बारे में कुछ न कुछ अवश्य लिख सकता हूँ लेकिन तुम्हारे सम्बन्ध में इतना कुछ कुरेदने के बाद भी समझ में नहीं आता कि तुम्हारा क्या किया जाय, भगवान् के लिए अब तो चले जाओ, बहुत सता लिया तुमने!

× × ×

लेकिन मुझे मालूम है यह जायगा नहीं। इसी प्रकार मेरे मस्तिष्क पर सवार रहेगा और मेरी कहानियों में अपनी गंदी झाड़ू लिये खड़ा रहेगा। अब मैं समझता हूं तू क्या चाहता है ? तू वह कहानी सुनना चाहता है. जो अभी हुई नहीं, लेकिन हो सकती थी। मैं तेरे पाँव से आरम्भ करता हूं। सुन ! तू चाहता है न कि कोई तेरे गंदे खुरदरे पाँव धो डाले, धो-धो कर उन से गंदगी दूर करे। उनकी बिवाइयों पर मरहम लगाये। तू चाहता है तेरे घुटनों की उभरी हुई हड्डियां मांस में छुप जांय, तेरी जांघों में बल और कठोरता आ जाय। तेरे पेट की मुरझाई हुई सलवटें ग़ायब हो जायें, तेरी कमज़ोर छाती के धूल से अटे हुए बाल ग़ायब हो जायें। तू चाहता है कोई तेरे ओठों में रस डाल दे, उन्हें वाक्-शक्ति प्रदान कर दे। तेरी आँखों में चमक डाल दे, तेरे गालों में लहू भर दे, तेरी चिंदिया को घने बालों से ढक दे, तुझे साफ़-सुथरे वस्त्र दे दे, तेरे इर्द-गिर्द एक छोटी सी चारदीवारी खड़ी कर दे—सुन्दर ! स्वच्छ !! उसमें तेरी पत्नी राज करे, तेरे बच्चे क़हक़हे लगाते फिरें। जो कुछ तू चाहता है, वह मैं नहीं कर सकता। मैं तेरे टूटे-फूटे दांतों की हँसी पहचानता हूं। जब तू गाय से अपना सिर चटवाता है तो मुझे मालूम होता है कि तू अपनी कल्पना में अपनी पत्नी को देखता है जो तेरे बालों में अपनी उंगलियां फेर कर तेरा सिर सहलाती है, यहां तक कि तेरी आंखें बन्द हो जाती हैं, तेरा सिर झुक जाता है और तू उसकी कृपालु गोद में सो जाता है; और जब तू मेरे लिये आग पर धीरे-धीरे भुट्टा सेकता है और मुझे जिस प्रेम और स्नेह से वह भुट्टा खिलाता है, तू अपने मस्तिष्क की गहराई में उस नन्हें बच्चे को देख रहा होता है जो तेरा बेटा नहीं है, जो अभी नहीं आया, जो तेरे जीवन में कभी नहीं आयगा लेकिन जिससे तू ने एक बाप की तरह प्रेम किया है। तू ने उसे गोदियों में खिलाया है। उसका मुँह चूमा है। उसे अपने कंधे पर बिठाकर, संसार भर में घुमाया है। देख लो, यह है मेरा बेटा, यह है मेरा बेटा !

और जब यह सब कुछ तुझे नहीं मिला तो तू सब से अलग होकर खड़ा हो गया और आश्चर्य से अपना सिर खुजाने लगा और तेरी उँगलियाँ आप ही आप गिनने लगीं—एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात, आठ रुपये। मैं तेरी वह कहानी जानता हूं जो हो सकती थी, लेकिन हो न सकी, क्योंकि मैं कहानीकार हूँ। मैं एक नई कहानी घड़ सकता हूं, एक नया मनुष्य नहीं घड़ सकता। उसके लिये मैं अकेला काफ़ी नहीं हूं, इस के लिये कहानीकार और उसका पढ़ने वाला और डाक्टर और कम्पौंडर और बख़्तियार और गांव के पटवारी और नम्बरदार और दुकानदार और शासक और राजनीतिज्ञ और मज़दूर और खेतों में काम करने वाले किसान, प्रत्येक व्यक्ति की, लाखों, करोड़ों, अरबों व्यक्तियों की इकट्ठी सहायता चाहिये। मैं अकेला विवश हूं, कुछ नहीं कर पाऊँगा। जब तक हम सब मिलकर एक दूसरे की सहायता न करेंगे, यह काम न होगा, और तू इसी प्रकार अपनी झाड़ू लिये मेरे मस्तिष्क के दरवाज़े पर खड़ा रहेगा और मैं कोई महान् कहानी न लिख सकूंगा जिसमें मानव-आत्मा का पूर्ण उल्लास झलक उठे, और कोई मेमार महान् भवन न बना सकेगा जिस में हमारी जाति की महानता अपने शिखरों को छू ले, और कोई ऐसा गीत न गा सकेगा जिसकी गहराइयों में विश्व का सारा रहस्य छलक-छलक जाए।

यह भरपूर जीवन संभव नहीं, जब तक तू झाड़ू लिये यहां खड़ा है।

× × ×

अच्छा है खड़ा रह। फिर शायद कभी वह दिन आ जाय कि कोई तुझ से तेरी झाड़ू छुड़ा दे और तेरे हाथों को नरमी से थाम कर इन्द्रधनुष के उस पार ले जाय।

: ६ :

बहार के बाद

पन्द्रह अगस्त १९४८ के दिन एक समाचार-पत्र का पहला शीर्षक यह था :—

चर्खा चलाओ, सूत कातो

राजन बाबू का आदेश ।

कांग्रेस के सभापति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने लोगों से अपील की है कि वह स्वतंत्रता के दिन हंगामा न करें बल्कि गंभीरतापूर्वक, ध्यान में मग्न हो स्वतंत्रता दिवस मनायें । उस दिन स्वतंत्रता के मतवाले चर्खा चलायें, सूत कातें......

मदनपुरा में सेठ यासीन भाई की मसजिद के पास एक बहुत तङ्ग और अंधकारमय कोठरी में करीमा जुलाहा रहता था । करीमा जुलाहा और उसकी बूढ़ी पत्नी और उसके पांच बच्चे । सब से बड़ी बच्ची अठारह वर्ष की थी । उसका नाम फ़िरोज़ा था । करीमा को उस के विवाह की बहुत चिंता थी, यह चिन्ता उसे स्वतंत्रता के दिन भी घुलाये डालती थी । करीमा जुलाहा था । जीवन भर उस ने चर्खा चलाया था, चर्खे पर काम किया था और सूत की अंटियां घुमाई थीं । यही काम करते-करते उस की आंखों की ज्योति कमज़ोर हो गई और हाथों में कम्पन आ गया । वह उस अंधेरी कोठरी में पिछले पच्चीस वर्ष से रहता चला आया था । जब वह जवान था । आज उसकी बेटी जवान थी । कोठरी वही थी, मसजिद वही थी । गली का फ़र्श वही

था, बगल में पलंग और कागज़ी फूल और विक्टोरिया के घोड़ों के लिये कलग़ी बेचने वाले की वही दुकान थी। गली से बाहर सेठ यासीन भाई का तीन मंजिला घर था। सेठ यासीन भाई जो १५ अगस्त १९४७ से पहले मुसलिम लीगी थे और १५ अगस्त १९४७ के बाद से पक्के कांग्रेसी बन गये थे। इस मुहल्ले के सभी घर उन के थे। उन का किराया उन्हीं को जाता था। यह मसजिद भी उन्होंने बनवाई थी। उनके घर के भीतर तीन पत्नियां थीं, घर के बाहर गैरज में चार मोटरें थीं जो उनकी पत्नियों की तरह सदैव सजी-सजाई नज़र आतीं। सेठ यासीन भाई की आयु पचास वर्ष से ऊपर थी। लालसा पच्चीस से नीचे थी। जब करीमा उनके दफ्तर में कोठरी का किराया देने आता और उन से बुझे-बुझे स्वर में अपनी दुःख-गाथा कहता तो सेठ मुस्करा कर कहते—हो जायेगा, सब ठीक हो जायेगा। तुम्हारी फ़िरोज़ा का ब्याह भी हो जायेगा। अल्लाह सब ठीक कर देगा तो करीमा जुलाहा प्रसन्न हो सेठ यासीन भाई को दुआएं देने लगता।

आज स्वतंत्रता के दिन करीमा के घर में चर्खा भी था और चर्खा चलाने वाले भी। हां सूत कातने के लिये रुई न थी। मिल के कपड़े का भाव चौगुना हो गया था तो रुई का दाम भी उसी भाव से बढ़ गया था लेकिन सूत और हाथ के सूत से बने हुए कपड़े के दाम बहुत कम बढ़े थे क्योंकि मिलों के कपड़े तो सब पहनते हैं, खद्दर कौन पहनता है और वह भी हाथ का बना हुआ। एक गांधी जी पहनते थे उन्हें एक भारतीय ने मार डाला। एक अब्दुलगफ्फार पहनते थे उन्हें भी क़ैद कर लिया गया। रुई के दाम बढ़ गये थे। मिल के कपड़े के दाम बढ़ गये थे लेकिन हाथ के बने हुए सूती कपड़े के दाम न चढ़े थे। इसीलिये तो आज करीमा के घर में रुई न थी। उसके घर में पांच बच्चे थे, एक पत्नी थी और एक अठारह वर्ष की बेटी जिसका उसे विवाह करना था। लेकिन उस के घर में रुई न थी। इसलिये दिये में तेल न था। हांडी में गोश्त न था, चूल्हे में लकड़ी न थी। वह देर

तक दरवाज़े पर खड़ा रहा और कांपते हुए हाथों को ऊपर उठा कर मसजिद की ओर तकता रहा। फिर उसके हाथ धीरे से नीचे गिर गये और उसने फ़िरोज़ा को आवाज़ दी।

"जी, अब्बा" फ़िरोज़ा अपनी फटी ओढ़नी को संभालते हुए आंखें झुका कर करीमा के सामने खड़ी हो गई।

"सेठ के घर में चली जा और उनकी बड़ी बीवी से दो रुपये मांग ला। वह तुझ से बहुत प्यार करती हैं ना। कह देना, अब्बा अगली जुमेरात पर लौटा देंगे।"

"बहुत अच्छा अब्बा।"

फ़िरोज़ा चली गई। करीमा आश्चर्य और भय से उस के भर हुए शरीर को देखता रहा। अल्लाह वह दिन जल्द आये जब उसकी बेटी के हाथ पीले हों और वह अपने खाविन्द के घर चली जाय। फ़िरोज़ा नज़रों से ग़ायब हो गई और करीमा की नज़रें मसजिद के मीनारे की ओर उठ गईं जहां एक कबूतर चक्कर लगा रहा था।

"अब्बा, अब्बा, हम एक कौमी पतङ्ग लेंगे।"

यह उसका छोटा लड़का अलीम बोल रहा था। उसकी आयु सात वर्ष की होगी। वह एक फटा हुआ पायजामा पहने हुए था। कमीज़ उस के पास न थी। जब वह बहुत छोटा था तो कमीज़ पहना करता था। पांच वर्ष तक वह केवल कमीज़ पहनता रहा जब छटे वर्ष में आया तो उसे पायजामा पहनने को मिला। अब पायजामा तो मिला लेकिन कमीज़ उतर गई। अलीम ने अब्बा से बहुत-कुछ कहा-सुना लेकिन करीमा के पांच बच्चे थे। वह क्या कर सकता था? उस ने साफ़ कह दिया। मियां या तो कमीज़ पहनो या पायजामा। दोनों चीज़ें नहीं मिल सकतीं। मुझे दूसरों का तन भी ढकना है। एक तुम्हीं घर भर की संतान नहीं हो। अलीम ने हार मान ली। उसने अब तक पायजामा नहीं पहना था इसलिये उसने पायजामा पहनना पसंद किया। कमीज़ की जगह उसने गले में एक तावीज़ बांध रखा था।

अलीम ने अब्बा की उंगली पकड़ कर कहा :—

"कौमी पतंग लेंगे अब्बा।"

"अरे वह क्या होता है ?"

"वह दुकान पर है, चलिये दिखायें आपको।"

दुकान पर काग़ज़ी तिरंगे का पतंग बना हुआ था। तीन आने में मिलता था। बहुत से पतंग थे। करीमा ने अगले शुक्रवार के वायदे पर अलीम को पतंग ले दिया और अलीम नाचता-कूदता पतंग झम-झमाता हुआ चला गया।

दुकान वाले जुम्मन चाचा ने कहा "आज आज़ादी का दिन है, कौमी पतंग बहुत उड़ रहे हैं।"

करीमा ने मरे हुए स्वर में कहा "भाई पिछले साल भी यही दिन आया था। मुसलमानों को पाकिस्तान मिला, हिन्दुओं को हिन्दोस्तान। जब कितनी खुशी थी।"

जुम्मन ने मुंह लटका लिया "हम सोचते थे, अब कुछ होगा। लेकिन भइया कुछ भी तो नहीं हुआ। बस खाली कौमी पतंग उड़ाते हैं। इनकी बिकरी आज भी अच्छी हो रही है" जुम्मन इतना कह कर दो एक ग्राहकों को माल देने लगा।

करीमा जुम्मन के पीछे पीछे चला आया। बोला, खाली ख़ूली कौमी पतंग उड़ते हैं लेकिन डोर वही है, मांझा भी वही है। मेरे यार ने कोठरी में सफ़ेदी भी नहीं कराई पच्चीस साल से। हां किराया बढ़ा दिया है आज़ादी के बाद से।"

जुम्मन बोला "एक किराये को रोते हो, यहां हर चीज़ के दाम चौगुने, पांचगुने, दसगुने होते जा रहे हैं।"

करीमा बोला "मैं सोचता था, आज़ादी मिली है। मैं सरकार से अपनी बेटी के ब्याह के लिए रुपया कर्ज़ लूँगा। नई खोली में रहूंगा। एक नया कर्घा खरीदूंगा और बीवी बच्चों के लिए कपड़े सिलवाऊंगा। आज तो हकीम जी की दवा के पैसे भी नहीं हैं और आज सवेरे मैं

दिलदार होटल में गया कि उसके मालिक से, अपना महरबान है न वह, कुछ रुपये ले आऊँ; लेकिन वह कम्बख्त साफ़ इनकार कर गया। उधर दिलदार होटल में रेडियो पर कोई बोल रहा था कि आज आज़ादी के दिन सब लोग चर्खा कातें। सूत की अंटी तय्यार करें। इधर पच्चीस वर्ष से अपना यही धंधा है। तो क्या होता है इस से जी—।"

करीमा योंही बड़बड़ा रहा था कि अलीम भागता हुआ आया, बोला "फ़िरोज़ा बुलाती है।" करीमा दुकान से निकल कर अपने घर चला गया।

फ़िरोज़ा कहने लगी "सेठ की बीवी ने रुपये नहीं दिये, मैं लौट आई। सीढ़ी पर सेठ यासीन भाई खड़े थे। बोले, "फ़िरोज़ा कैसे आई हो" मैंने कहा "रुपये लेने आई थी।" बोले "कितने रुपये चाहियें ?" मैंने कहा "दो"। बोले "यह दस का नोट लेलो।" मैंने ले लिया। वह मुझे खींच कर गुसलखाने में लेजाने लगे। मैं चीख़ने लगी। बड़ी बीवी बाहर निकल आई। उन्होंने मुझे छोड़ दिया। मैं भाग कर चली आई।"

इतना कहने के बाद फ़िरोज़ा ने दस का नोट ज़मीन पर फैंक दिया और अपनी फटी हुई ओढ़नी में मुंह छुपा कर रोने लगी।

फ़िरोज़ा देर तक रोती रही। देर तक करीमा मसजिद के मीनारे की ओर देखता रहा। देर तक उन कौमी पतंगों की ओर देखता रहा जो ऊपर आकाश में उड़ानें भर रहे थे। फिर सेठ यासीन भाई की मोटर गुज़रने की आवाज़ आई। वही भौंपू था। करीमा ने मुड़कर देखा। सेठ का ड्राइवर उसे बुला रहा था। करीमा थरथर कांपने लगा। वह हाथ जोड़े हुए मोटर की ओर बढ़ा।

गाड़ी में सेठ बैठे हुए थे। बोले "करीमा, पहली से कोठरी खाली कर दो।"

करीमा ने कांपते कांपते कहा "बहुत अच्छा सेठ।"

सेठ की गाड़ी चली गई, जिसके आगे तिरंगा लहरा रहा था, जिस पर कभी सब्ज़ हलाली निशान का झंडा होता था। गाड़ी चली गई और सेठ को भी ले गई जिन्होंने खद्दर का अचकन और खद्दर का चूड़ीदार पायजामा पहन रखा था। सिर पर कभी जिन्नाह कैप होती थी आज खद्दर की टोपी थी। गाड़ी चली गई और जाते जाते निर्धन जुलाहे की खोली भी ले गई। बूढ़ा करीमा रोने लगा, वह अब कहां जायेगा? अलीम अपने अब्बा को आंसू पोंछते देख कर डरते डरते उसके पास आया; बोला:

"अब्बा हम से यह पतंग नहीं उड़ता, इसे उड़ादो।"

जुलाहे ने क्रोध में आकर अलीम के एक थप्पड़ मारा और क्रोध में भरा हुआ बाज़ार की ओर चला गया, जहां दिलदार होटल था और जहां रेडियो ऊँचे स्वर में कह रहा था:

चर्खा चलाओ, सूत कातो, आज स्वतंत्रता का शुभ दिन है।

पन्द्रह अगस्त १९४८, राजन बाबू कांग्रेस के सभापति का बयान...

...ताज में और ग्रीन में और अन्य बड़े बड़े होटलों में हज़ारों चर्खे चल रहे थे और सुन्दर औरतें बहुमूल्य वस्त्र पहने हुए चर्खा चला रही थीं और पुरुष सूत की अंटियां तय्यार कर रहे थे। मैरीनड्राइव पर बम्बई के सारे लखपति व्यापारी एकत्रित थे और समुद्र के किनारे आलती-पालती मार कर चर्खे घुमा रहे थे और राम धुन गा रहे थे। १५ अगस्त १९४८ को स्वतंत्रता के दिन......

१५ अगस्त १९४८ के दिन दूसरे समाचारपत्र का पहला शीर्षक यह था—

काश्मीर में पाकिस्तानी फ़ौजों को हरा दिया गया।

भारतीय फ़ौजों ने महंडर गांव पर अधिकार जमा लिया।

काश्मीर स्वतंत्र रहेगा।

शेख अब्दुल्ला की घोषणा काश्मीरी जनता के हृदय में इस प्रकार......

...महंडर गांव में दो नाले बहते हैं; एक तो महंडर का नाला है, दूसरा ऊपर पहाड़ों से बहता हुआ आता है। यह घड़े का नाला है क्योंकि यह पहाड़ों की ऊंची घाटियों पर आबाद छोटे से कस्बे घड़े के निकट से होकर गुज़रता है। जहां पर ये दोनों नाले मिलते हैं वहां एक ऊंचा सा टीला है जिस के आस-पास कोई पचास कनाल ज़मीन होगी। इस टीले पर बूढ़े मिशर का घर है और यह पचास कनाल ज़मीन भी उसी की है। बूढ़े मिशर के तीन जवान बेटे हैं। दो बहुएं, तीन बेटियां और चार छोटे लड़के। उसकी पत्नी मर चुकी है जिस का उसे बहुत दुख है। वह अक्सर घर के बाहर अखरोट के वृक्ष के तने से लग कर नीचे बहती हुई महंडर की नदी को तका करता है जहां उस की पत्नी के शरीर को जलाया गया था। उसे वह दिन कभी नहीं भूलता। कभी कभी शाम को खड़े खड़े वहीं नाले के पास से उसे अपनी पत्नी की चिता फिर से जलती हुई नज़र आती है और वह गायत्री का जाप करने लगता है।

जब काश्मीर का युद्ध छिड़ा तो पहले महंडर गाँव पर पाकिस्तान से आए हुए स्वतंत्र पठानों ने कब्ज़ा कर लिया। महंडर के आस-पास के सारे गाँव मुसलमानों के थे। महंडर में भी मुसलमानों की संख्या अधिक थी। कुछ घर ब्राह्मणों के थे जो हज़ारों वर्ष से बसते चले आ रहे थे और वे ब्राह्मण ही रहे थे और किसी ने उन्हें कुछ न कहा था। किसी ने उनके धर्म को बदलने की कोशिश न की थी। लोग बिल्कुल शांतिपूर्वक मिल-जुल कर रहते थे।

लोग शांतिपूर्वक रहते थे। हिन्दु भी और मुसलमान भी, लेकिन

शासक नहीं। बूढ़े मिशर को राजा हरदेव सिंह के दिन याद थे जब हरेक से बेगार ली जाती थी। जब गाँव से सारा अनाज छीन लिया जाता था और गाँव के पुरुषों को कोड़े लगाये जाते थे। हां ब्राह्मणों को छोड़ दिया जाता था। इसके बदले में राजा हरदेव सिंह ब्राह्मण औरतों से सामयिक प्रेम करता था। उसे मिशर की पत्नी गोमां पसंद आ गई थी और राजा ने उसे घर से पकड़ बुलाया था। मिशर कुछ न बोल सका था। राजा के साथ रात व्यतीत करने के बाद भी गोमां उसकी पत्नी रही थी और कोई कुछ न कह सका था। कोई क्या कहता। राजा साहब ने किसी की पत्नी हथिया ली तो किसी की बहू या किसी की बहिन। बात एक ही थी। कोई कुछ कहता तो कैसे ?

राजा हरदेव सिंह बहुत बड़ा जागीरदार था। जनता उससे पनाह मांगती थी। वह महाराजा हरिसिंह का सम्बंधी था। उसके ज़माने में इलाके में कई बार विद्रोह हुआ और किसानों ने स्वतंत्रता चाही लेकिन हर बार यह विद्रोह सख़्ती से दबा दिया गया और विद्रोह करने वालों के सिर नेज़ों पर लटका कर फिराये गये और उन की खाल खिंचवा दी गई।

वे दिन बहुत बुरे थे। परतंत्रता के दिन थे। १५ अगस्त के बाद स्वतंत्रता मिली और महंडर गाँव पर स्वतंत्रता के मतवालों ने कब्ज़ा कर लिया। उन्होंने केवल कब्जा ही नहीं किया बल्कि उसके सब निवासियों और उनकी सारी चीज़ों पर कब्ज़ा कर लिया। सभी सुन्दर स्त्रियाँ चुन-चुन कर स्वतंत्र की गईं और बहुत सी इलाके से बाहर भेज दी गईं। मिशर की बहुएं और बेटियां कोहाट से परे पहुँच गईं। उसके छोटे बेटे मुसलमान हो गये और बड़े बेटे जंगलों से होते हुए राजौरी भाग गये और राजौरी से होते हुए जम्मू पहुँच गये और यहाँ वे सेना में भरती हो गये क्योंकि उन के हृदय में बदला लेने की आग सुलग रही थी। केवल बूढ़ा मिशर अपने घर के बाहर अखरोट के वृक्ष के तने से लगा खड़ा रहा और नीचे बहती हुई महंडर नदी के

बहाव को तकता रहा जहाँ उसे अपनी पत्नी की जलती हुई चिता नज़र आती थी। हमलावरों ने मिशर को नहीं मारा। उसे पागल समझ कर छोड़ दिया।

जब भारतीय सेना बढ़ते-बढ़ते महंडर गांव के निकट आ गई तो हमलावरों ने नदी के उस पार मोरचे बांध लिए। इस पार भारतीय सेना का मोरचा था, उस पार पाकिस्तानी सेना का। ये दोनों सेनायें १५ अगस्त १६४७ से पहले एक सेना कहलाती थीं और इनकी लोहा लेने की शक्ति ने पिछले महायुद्ध में बहुत धूम मचा दी थी। अब स्वतंत्रता आ गई थी इसलिए अब एक सेना दो सेनाओं में बट गई थी और दोनों ने एक दूसरे के आमने-सामने मोरचे बांध लिए थे बीच में मिशर का घर था। एक ऊँचे टीले पर जिसके चारों ओर महंडर की नदी और धड़े की कस्सी बहती थी। दोनों सेनायें इस जगह को प्राप्त करने के लिए जी-जान की बाज़ी लगा रही थीं। अग्नि-गोले दोनों ओर से आते और टीले की झाड़ियों, वृक्षों को झुलसते हुए आगे निकल जाते। हिन्दोस्तानी तोपखाने का एक गोला घर पर आ गिरा और बूढ़े मिशर ने अपने पुराने सुन्दर घर की दीवारों को उखड़ कर गिरते हुए देखा। पहले घर की दीवारें गिरीं। साथ में छत। फिर कुछ न रहा। चारों ओर धूल सी उड़ी और गरम-गरम धूल मिशर के नथनों को झुलसाती गई।

दो दिन की गोला-बारी के बाद भारतीय सेना ने इस टीले पर कब्ज़ा कर लिया। कब्ज़ा करने वालों में मिशर का अपना बेटा कांशी भी था।

मिशर अखरोट के वृक्ष के पास खड़ा था। कांशी बन्दूक उठाये उसके पास आया। बोला "चाचा, चाचा" मिशर ने उसकी ओर देखा और फिर मुँह फेर लिया "चाचा मुझे नहीं पहचानते हो, अपने बेटे कांशी को......?"

मिशर ने कहा "तुम यहां क्या करने आये हो ?"

"मैं महंडर गांव को आज़ाद कराने आया हूं, चाचा ?"

मिशर ने कहा "पहले वह पाकिस्तान के पठान आये थे। वह हमें आज़ाद देखना चाहते थे। एक दिन में मेरे घर की बहुएं गायब हो गईं। अब तुम आये और आज ही मेरा घर जला। तुम भी हमारी आज़ादी चाहते हो, फिर लड़ाई क्यों है ?"

कांशी बोला "चाचा, आज़ादी..."

मिशर के मुंह से झाग निकलने लगी, उसकी लाल-लाल आँखों में एक विचित्र सा वहशीपन आगया। बोला, "कौन आज़ादी चाहता है, कौन है वह बदमाश......"

"चाचा...चाचा..."

"मेरी आज़ादी ले लो, मुझे मेरे खेत वापस करदो, मेरी बहुएं कोहाट से मंगा दो, मेरी लड़कियां मुझे लौटा दो। मेरे घर की दीवारें मुझे दे दो..."

एकाएक मिशर ने कांशी का हाथ ज़ोर से पकड़ लिया और बोला "वह देखो, वह देखो, नदी के किनारे चिता जल रही है। एक चिता नहीं है दो चितायें हैं......हिन्दुस्तान की चिता...पाकिस्तान की चिता...वे सुर्ख-सुर्ख शोले देख रहे हो तुम !"

एक हवाईजहाज़ कस्बे पर पैम्फ़लेट बरसाता हुआ गुज़र गया। काग़ज का एक टुकड़ा अखरोट की टहनियों पर से फिसलता हुआ मिशर के पांव पर जा गिरा। उस पर लिखा था—

काश्मीर में आज़ादी का जशन।

श्रीनगर में पंडित नेहरू का आगमन।

शानदार स्वागत, सारा शहर दुलहन की तरह सजा हुआ और......

१९ अगस्त १९४८ को एक समाचार-पत्र का पहला शीर्षक यह था:—

पाकिस्तान इस्लामी रियासत है ।

रोज़ा न रखने वालों के दुर्रे लगाए जायेंगे ।

मोची' गेट के बाहिर बिरादराने-इस्लाम का अज़ीमउलशान मुज़ाहिरा जिसमें भाईचारे और अमन......

हनीफ़ लुधियाना प्रांत के एक गांव छीना का रहने वाला था। हनीफ़ तेली था। उसका बाप भी तेली था और वह कई सौ वर्ष से उसी गांव में तेलियों का काम करता चला आ रहा था। यह गांव सिक्खों का था। मुसलमानों के घर यही कोई दस-बारह होंगे। फज्जा लोहार, मुहम्मद जुलाहा और हाशिम कुम्हार और आठ-दस कमीनों के घर और बस एक पीर जी का तकिया था और एक छोटी सी मसजिद और जब १५ अगस्त १९४७ के बाद फ़िसाद शुरू हुआ तो न वह तकिया रहा न वह मसजिद। न उन कमीनों के घर रहे न उन जुलाहों, कुम्हारों और तेलियों के रोज़गार। शुरू शुरू में तो गांव के सिक्खों ने बड़ी हिम्मत से काम लिया और गिने-चुने मुसलमान घरों की रक्षा की। लेकिन जब दूसरे गांव के सिक्ख आकर उन्हें कोसने लगे और बन्दूकें ले ले कर चढ़ दौड़े तो गांव वालों को भय का अनुभव हुआ। अतएव उन्होंने मुसलमान घरों पर से अपनी छत्र-छाया उठा ली और उन्हें गांव से निकल जाने की आज्ञा दी। सिक्ख औरतें अपनी मुसलमान सहेलियों से गले मिल-मिल कर रोईं और गांव की चौहद्दी तक उनसे मिलने के लिये आईं। कुछ सिक्ख उन मुसलमान खानदानों के साथ हो लिये ताकि उन्हें सुरक्षित रूप से लुधियाने पहुंचा दें।

रास्ते में कोट गांव के सिक्खों ने उस काफ़िले पर आक्रमण किया। रक्षा करने वालों ने योंही सा मुकाबला भी किया लेकिन आखिर वे कहां तक कर सकते थे। परिणाम स्वरूप उन सब में से कुल चौदह जने लुधियाना स्टेशन पर पहुंच सके। बच्चे मार डाले गये। बूढ़ी औरतें खत्म करदी गईं। बूढ़े और अधेड़ आयु के बुज़ुर्ग भी चल बसे और नौजवान और जवान औरतें हमला-आवरों में बांट ली

गईं और जब हनीफ़ अपनी पत्नी बलकीस को लेकर लाहौर पहुँचा तो चौदह में से केवल तीन आदमी बचे। एक हनीफ़ एक बलकीस, एक आज़ाद पाकिस्तान! सामने कैम्प था। हनीफ़ कैम्प में पहुंचा जहां हज़ारों आज़ाद मुसलमान अपनी गर्व-पूर्ण आज़ादी प्राप्त करके प्रसन्नतावश एकत्रित हो रहे थे। उनके पांव तले धरती थी, सिर पर खुला आकाश था और चारों ओर लोहे की बाड़ थी। रज़ाकार हर नये आने वाले से बड़ी सहानुभूति से पेश आते थे और उसे 'मुजाहद' का खिताब देते और उसे उसके कैम्प के सैक्शन में ले जाते। हनीफ़ और उसकी पत्नी बलकीस को सैक्शन नंबर '२' में रखा गया।

'२' सैक्शन में लुधियाने के बहुत से शरणार्थी एकत्रित थे। हर व्यक्ति कैम्प के प्रबन्ध से अप्रसन्न था। स्वतन्त्रता पाकर उदास, गंभीर और दुखित नज़र आता था। दिन-भर लड़ाई-झगड़ा होता रहता। कई बार तो शरणार्थियों में आपस में चल जाती। लुधियाने के शरणार्थी जालंधर वालों को और जालंधर के शरणार्थी अमृतसर वालों को कोसने देने लगते।

'२' सैक्शन में कुछ रज़ाकार पहुँचे, बोले "आप लोगों के लिए माडल टाउन में बन्दोबस्त किया है।"

"माडल टाउन में?" आंखें प्रसन्नता से चमकने लगीं।

"जी हां, लेकिन पहले आप लोगों का सामान जायेगा और बच्चे और औरतें। दूसरे ट्रिप में आप लोग।"

"ठीक है, ठीक है, पहले बच्चे और औरतें, बाद में हम लोग... ...माडल टाउन, बात हुई ना?"

पहले ट्रिप में बलकीस गई, सकीना बी० ए० गई, अलमास गई, रोशन आरा गई और बहुत-सा सामान गया और फिर लारी वापस नहीं आई।"

संध्या समय ढूंढा गया, रात-भर ढूंढा गया, दूसरे दिन, तीसरे दिन, वे रज़ाकार कहीं नहीं मिले। शरणार्थी क्रोधित हो उठे और कैम्प के बाहर पुलिस और मिलिटरी पर पथराव करने लगे। आखिर गोली चली। दो-तीन शरणार्थी सख्त घायल हुए, लेकिन हनीफ़ जान से मारा गया।

१५ अगस्त १९४८ को बलकीस लायलपुर के एक जांगली मुसलमान सरदार के पास थी जो एम० एल० ए० भी था और अपने इलाके का सबसे बड़ा जागीरदार भी। जागीरदार ने बलकीस को साढ़े सात सौ रुपये में उस नकली रज़ाकार से ख़रीदा था। वे रज़ाकार उसके अपने गुंडे थे। बलकीस उस समय प्याले भर-भर कर उसे शराब पिला रही थी और कमरे में रेडियो कह रहा था :

पाकिस्तान इस्लामी रियासत है।

रोज़ा न रखने वालों के दुर्रे लगाये जायेंगे।

बड़े चौक में राजा गज़नफ़र अली खाँ ने तक़रीर फ़रमाई जिसमें उन्होंने महाजरीन को बसाने की स्कीम पर......

......१५ अगस्त १९४८ को पाकिस्तान में आने वाले सब महाजरीन बसा दिये गये। कराची, लाहौर, रावलपिंडी, गुजरांवाला, वज़ीराबाद, कसूर, पाकिस्तान के किसी शहर में अब कोई शरणार्थी कैम्प नहीं है। सब लोग घरों में आबाद कर दिये गये हैं, ज़मीनें किसानों में बांट दी गई हैं। जिस जागीरदार के पास पचास एकड़ से अधिक ज़मीन थी उससे ज़मीन छीन कर निर्धन किसानों और शरणार्थियों में बांट दी गई है। खांड की मिलों, कपड़े की मिलों, तेल के कारख़ानों, छापाख़ानों और अन्य औद्योगिक संस्थाओं को पाकिस्तान के मुसलमान मज़दूरों के हवाले कर दिया गया है ताकि वे पूंजीवाद को ख़त्म कर सकें कि जिसका इस्लाम-धर्म से दूर का भी सम्बन्ध नहीं।

१५ अगस्त १९४८ को चौथे समाचार-पत्र का मुख्य शीर्षक यह था :—

वृक्ष उगाओ।

स्वतन्त्रता के दिन वृक्ष उगाओ।

स्वतन्त्रता-दिवस पर मध्य-प्रांत के मन्त्री श्रीयुत......सैक्रेटेरियट के सामने पेड़ लगायेंगे। इस अवसर पर शहर के सब धनाढ्य और उच्च अधिकारी......

......सेठ सूंगटा के बागीचे का माली एक आँख से काना था लेकिन बहुत होशियार था। बागीचे को उसने ऐसी कारीगिरी से सजाया था कि एक बार तो यदि हैंगिंग गार्डन के माली भी उसे देखें तो उसके हाथ चूम लें। माली कारीगर तो बहुत अच्छा था लेकिन स्वभाव उसका बहुत तेज़ था और बातें बहुत कटु। और अपने हां तो कहा जाता है कि जो व्यक्ति अंगहीन हो वह बिल्कुल विश्वास योग्य नहीं होता। माली के सम्बन्ध में इतना तो नहीं कहा जा सकता लेकिन इसमें भी संदेह नहीं कि वह बहुत चतुर था, एक काइयां। सेठ सूंगटा स्वयं भी बहुत चालाक थे। स्टाक एक्सचेंज पर सोने के भाव के माने हुए खिलाड़ी थे और अक्सर अपने मुकाबले पर आने वालों को हानि पहुँचाते थे, लेकिन अपने माली से वह भी दबते थे। कई बार उसे नौकरी से अलग कर देने की धमकी दे चुके थे लेकिन फिर भी उसकी कड़वी लेकिन सच्ची बातों से प्रभावित हो चुप हो जाते।

माली बागीचे में उस समय गुलाब के एक पौदे की नलाई कर रहा था। पौदे की चोटी पर गुलाब की एक मुंहबन्द कली थी, पत्तों में लिपटी हुई, लजाई-लजाई सी, कोमल कंवारी कली।

सेठ के धोबी की माली से गाढ़ी छनती थी। उस समय धोबी आकर कहने लगा :

"भई आज आज़ादी का दिन है।"

"तो फिर क्या करूँ ?" माली बोला।

"सेठ कह रहे थे" धोबी बोला "वह अभी सैक्रेटेरियट जा रहे हैं जहां मंत्री जी पेड़ लगायेंगे।"

"तो फिर क्या करूं?"

धोबी ने कहा "और यह भी कह रहे थे कि आज चार सौ पेड़ लगाये जायेंगे जिन पर बीस हज़ार रुपया खर्च उठेगा।"

माली बोला "मुझे बीस हज़ार रुपये दें, मैं चार सौ तो क्या कम से कम दस हज़ार वृक्ष लगाये देता हूँ। लेकिन यह तो किसी ने ठेका लिया होगा मेरे यार ने।"

"अरे नहीं जी" धोबी बोला, "तुम्हें तो हर समय उल्टी ही सूझती है। और सेठ यह भी कह रहे थे कि आज हर भारतीय को एक पेड़ लगाना चाहिए।"

माली बोला "मेरा तो जीवन ही पेड़ लगाने और उगाने में बीत गया है फिर भी तो जीवन में कभी रौनक नहीं आई और फिर भइया पेड़ लगाकर कोई क्या करे? पेड़ लगाये कोई और फल खाये कोई। अब देखो मैं इस बागीचे का माली हूं। इस बागीचे की सारी रौनक़ अपने दम से है। ये क्यारियाँ, ये फूल, ये फल, ये पत्तियां, इनकी सारी बहार अपने से है लेकिन यह बहार अपने लिए नहीं है। अपने लिए तो बस जब से पैदा हुए पतझड़ आगई। मैं फूल खिलाता हूँ, वे फूल सेठानी के जूड़े में महकते हैं और मेरी मालन बासी फूल उड़सती है। मैं आम की कलम लगाता हूं और आमों के टोकरे बरफ़खानों में ठंडे होकर सेठ के खाने की मेज़ पर पहुंचा दिये जाते हैं। अब तुम वृक्ष लगाने को कहते हो, मैं आयु भर से यही काम करता आया हूँ। लेकिन मैं पूछता हूं इससे मेरी हालत तो नहीं बदली, मैं कब तक दूसरों के लिए वृक्ष उगाता रहूंगा। तुम कब तक दूसरों के लिए कपड़े धोते रहोगे?"

"मेरे यार तुम सनकी हो," धोबी ने माली की पीठ पर हाथ मार

कर कहा। "चलो आज स्वतन्त्रता की पहली वर्षगांठ है, आज तो वैसा ही करें जैसा हमारे नेता कहते हैं। वह देखो, वहां जगह नंगी-बूची दिखाई देती है, वहां पेड़ लगाओ। लाल बजरी की सड़क के किनारे जिसके निकट से सेठ की मोटर गुज़रती है।"

माली ने ध्यान से उस जगह की ओर देखा, फिर सिर हिला कर कहने लगा। "बात तो तुम पते की कहते हो। आओ, यह आम का पेड़ लगादें वहां।"

दोनों मित्र लाल बजरी वाली सड़क पार करके बागीचे की दूसरी ओर चले गये और छोटा सा गढ़ा खोद कर उन्होंने आम के उस कोमल से पौदे को वहां लगा दिया। आम के नये नये पत्तों की हरियाली में हलका-हलका ऊदापन था और उन से बड़ी भीनी भीनी सुगंध उठ रही थी।

माली ने कहा "इस पेड़ के आम बहुत अच्छे होंगे, मीठे, रसदार, अलफांसू को शरमाने वाले। मैं अच्छी तरह......।"

माली आगे कुछ न कह सका क्योंकि सेठ सोंगटा की तेज़ मोटर शड़ाप से पास से निकल गई और माली और धोबी चौंक कर और एक दम उछल कर, अपने आप को बचाते हुए रास्ते से दूर जा खड़े हुए। मोटर बिल्कुल निकट से मोड़ काटती हुई आगे निकल गई और आम के नये पौदे को अपने टायर से कुचल कर टुकड़े टुकड़े कर गई।

× × ×

और पन्द्रह अगस्त की रात को माली ने एक बड़ा भयानक स्वप्न देखा। उसने देखा कि अनाज के ढेर ऊपर आकाश तक चले गये हैं और करोड़ों आदमी उनके गिर्द एकत्रित हो रहे हैं और ज्योंही वे लोग अनाज को उठाने के लिये अपने हाथ बढ़ाते हैं उन ढेरों के चारों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं और उन ढेरों को अपनी ओट में ले

लेते हैं और ये वृक्ष इस प्रकार एक दूसरे के साथ लगे खड़े हैं कि कोई अनाज का एक दाना भी नहीं ले जा सकता।

फिर उसने देखा कि हज़ारों सीढ़ियों के ऊपर बड़ी-बड़ी शानदार मिलें हैं जो शीशे की बनी हुई हैं। जिनके भीतर चरखियां चल रहीं हैं और कपड़ा बुन रही हैं और यह कपड़ा लाखों, करोड़ों, अरबों गज़ तय्यार होकर ऊपर आकाश की ओर बादल बन कर उड़ा जा रहा है और सीढ़ियों पर लाखों आदमी नंगे पड़े हैं और घिसट-घिसट कर ऊपर चढ़ रहे हैं और कपड़े के लिए चीख़ रहे हैं और ज्यों ही ये लोग बड़ी कठिनता से सीढ़ियां चढ़ कर दरवाज़ों तक पहुँचते हैं कि चारों ओर ऊंचे-ऊंचे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं एक दूसरे के साथ लगे हुए और उन की ओट में वे मिलें और कारख़ाने छुप जाते हैं और लोग सीढ़ियों पर निढाल होकर गिर पड़ते हैं।

और फिर उसने देखा कि एक बहुत बड़ा बाग है, मीलों तक फैला हुआ, और उसमें एक बहुत बड़ा महल है—कई एकड़ क्षेत्रफल में फैला हुआ; और उस महल के आलीशान दरवाज़े के बाहर गगन-चुम्बी सतूनों के पास एक दुबला-पतला आदमी खड़ा है, काला चश्मा लगाये, और उसके सामने हज़ारों लाखों आदमियों का समूह है। जो पुरुष हैं उन के सिर कटे हुए हैं और जो स्त्रियां हैं उनकी छातियां। और यह समूह लाखों ज़बानों से पूछता है, "इस मीलों तक फैले हुए बाग और इसके भीतर आलीशान महल में कौन रहता है?"

"मैं रहता हूँ।"

"तुम कौन हो?"

"मैं भारत का सब से बड़ा अफ़सर हूँ। तुम कौन हो?"

"हम भारत हैं।" लाखों ज़बानें, सुर्ख़-सुर्ख़ पतली ज़बाने बोलने लगती हैं "भूखा, नंगा, प्यासा भारत। हम इस महल के भीतर आना चाहते हैं क्योंकि हमारे पास कोई घर नहीं है, कोई ज़मीन नहीं है, कोई रोज़ी कमाने की सबील नहीं है।"

काला चश्मा पहने हुए वह दुबला-पतला आदमी बड़े धीमे और मृदु स्वर में कहता है "ठहरो ठहरो, मुझे "बरतानिया-मुकट" से पूछना होगा तुम नहीं जानते कि वैधानिक राज्य के अनुसार......

लेकिन लोग चिल्ला कर कहते हैं "दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो।"

वह दुबला-पतला आदमी भीतर चला जाता है। दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है फिर भी नहीं खुलता और लोग, हज़ारों, लाखों लोग, चारों ओर से आगे बढ़ते हैं और दरवाज़ा खोलने का प्रयत्न करते हैं। दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है लेकिन फिर भी नहीं खुलता......

और फिर माली ने देखा कि यह दृश्य एकाएक लुप्त हो गया है और उसके स्थान पर एक शानदार कोर्ट के गुंबद पर हरे रंग का झंडा लहरा रहा है और कोर्ट के चारों ओर लम्बे-चौड़े बलोच सिपाही खड़े हैं लेकिन जैसे वे पत्थर के बुत हों, बिल्कुल निश्चेष्ट, हालांकि उस समय चारों ओर से कटे हुए सिरों वाले पुरुष आगे बढ़ रहे हैं और हज़ारों स्त्रियां अपने घायल शरीरों को अपने बालों में छुपाये आगे बढ़ रही हैं। इन स्त्रियों के हाथों में तेल के कड़ाहे उबल रहे हैं जिन में उनके बच्चे तले जा रहे हैं। पुरुष अपने सिर अपने हाथों में लिये हुए हैं और उनकी आंखों से रक्त बह रहा है और स्त्रियों की आँखों से दूध के आंसू फूट रहे हैं और जहाँ पर उस दूध की एक बूंद गिरती है वहां से माँस के जलने की सी आवाज़ उत्पन्न होती है।

और ये हज़ारों लाखों पुरुष और स्त्रियां आगे बढ़ते हुए उस कोर्ट को चारों ओर से घेर लेते हैं। मक्खियों के भिनभिनाने का सा शोर उत्पन्न होता है और ऊँचा होता जाता है। इतने में कोर्ट का दरवाज़ा खुलता है और सुन्दर वस्त्रों में सजा हुआ एक व्यक्ति बाहर निकलता है और अपनी मृदु मुस्कान को अपने चेहरे पर ला कर पूछता है :—

"तुम लोग क्या चाहते हो ?"

"हम अन्दर आना चाहते हैं।"

"तुम अन्दर नहीं आ सकते।"

"क्यों ?"

"यह जगह मेरी है।"

"तुम कौन हो ?"

"मैं पाकिस्तान का सबसे बड़ा अफ़सर हूँ। और तुम कौन हो ?"

"हम पाकिस्तान हैं, हम महाजरीन हैं, हम लुटी हुई इसमतें हैं, हम तेल में भुने हुए बच्चे हैं, हम ज़िन्दगी की फ़रियाद हैं, इनसानियत का ज़ख़्म हैं, सरमायादारी का दाग़ हैं, जागीरदारी का ज़ुल्म हैं, मज़हब की लाश हैं, हमें अपने कलेजे से चिमटा लो, हमारे रिसते हुए नासूरों से मरहम की तरह लग जाओ।"

उस मीठी मृदु मुस्कान के साथ इनकार से सिर हिलाते हुए वह व्यक्ति भीतर चला जाता है और भीतर से झांक कर कहता है "मुझे अफ़सोस है भाइयो, मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"अगर तुम ऐसा नहीं कर सकते तो यह कोर्ट छोड़ दो और हममें आ मिलो।"

लाखों आवाज़ें गूंजती हैं।

"अफ़सोस है कि आप लोग जाहिल हैं, दस्तूरी हकूमत के आदाब, जिन से गवर्नर-जनरल पाकिस्तान का बराहेरास्त ताजे-बरतानिया से ताल्लुक है......

सुन्दर वस्त्रों वाला व्यक्ति भीतर चला जाता है। दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है फिर भी नहीं खुलता। और लोग—हज़ारों लाखों लोग चारों ओर से आगे बढ़ते हैं और दरवाज़ा खोलने की कोशिश करते हैं और दरवाज़ा पूरी तरह बन्द नहीं है लेकिन फिर भी नहीं खुलता......

और फिर माली ने देखा कि वह सब कुछ नहीं है केवल एक कार है जो दूर तक नये लगे हुए पौदों को रौंदती चली जा रही है। माली चीख़ता हुआ आगे बढ़ रहा है—ऐसा मत करो, ऐसा मत करो, ये नये पौदे हैं, ऐसा मत करो। वह दौड़ते-दौड़ते गिर पड़ता है एक कुचले हुए पौदे के पास और फिर वह हाथ बढ़ा कर उस पौदे को उठा लेता है और दूसरे क्षण में वह पौदा उसके हाथ में एक लहराता हुआ सांप का फन बन जाता है और वह घबरा कर और चीख़ कर उसे हाथ से छोड़ देता है और उसकी आंख खुल जाती हैं।

"क्या हुआ ?" माली की पत्नी ने उससे पूछा। माली बोला "ओह ! बड़ा भयानक और अजीब सपना था।"

वह आंखें मलता हुआ धीरे से अपनी खाट से उठा। उसने देखा कि स्वतंत्रता की रात समाप्त हो रही है और ऊषा की किरन फूट रही है। वह नलाई का सामान उठा कर बागीचे में चला गया जहां सुबह उसने गुलाब के पेड़ पर एक नन्हीं सी कली को फूटते देखा था।

यह कली उस समय गुलाब का एक हँसता हुआ फूल बन चुकी थी और उसकी कोमल पत्तियों पर ओस की बूदें कांप रही थीं।

: १० :

कहानी की कहानी

एक दिन मैं ने कहानी को बहुत सुन्दर वस्त्र पहनाये। उसे पश्मीने का फ़र्न पहनाया जिस पर काश्मीरी कारीगरों ने रंगा-रंग बेल बूटे काढ़े थे। उस की गरदन में सुर्ख़ मोतियों की सतलड़ी पहनाई। उस की आंखों में काजल लगाया। उसके बाल संवारे, उसके माथे पर बिंदिया लगाई। उसके पांव में घुंघरू बांध दिये और उसके हाथ में एक दफ़ देकर उसे अपनी वादी में भेज दिया।

कहानी बहुत शीघ्र वापस चली आई—उदास, परेशान, हैरान। उस का चेहरा पीला पड़ गया था, बाल उलझे हुए, फ़र्न जगह-जगह से फटा हुआ। आंखों का काजल उड़ चुका था। घुंघरू निःस्वर थे।

मैंने घबरा कर पूछा "क्या हुआ, वहां तो कभी इस प्रकार तुम्हारा स्वागत न किया गया था। सभी रास्ते में आंखें बिछाये तुम्हारे प्रतीक्षित रहते थे। चरवाहों से बादशाहों तक सभी तुम्हारे सुन्दर, मनोहर गीत सुनने के लिये बेचैन रहते थे। जल्दी कहो, वहां तुम्हारे साथ ऐसा बर्ताव किसने किया?"

कहानी बोली "तुम्हारी वादी में आज कोई मेरे मीठे गीत सुनने के लिये तय्यार नहीं। डल के किनारे छोटे-छोटे बच्चे सैनिकों के खेल खेल रहे हैं। औरतें चौक में खड़ी होकर सिपाहियों की तरह पहरा दे रही हैं। कारीगर कर्घों पर नये काश्मीर का ताना बाना बुन रहे हैं। किसी के पास इतना समय नहीं है कि मेरे सुन्दर मुखड़े को देखे। मेरे ओठों से

फूलों की तरह खिलते हुए गीत और मेरे पांव के नाज़ुक घुंघरुओं की मीठी झङ्कार सुने। मुझे वहां से वापस आना पड़ा।"

मैंने कहा "तो तुम युद्ध-क्षेत्र में गई होती।" कहानी बोली "मैं वहां भी गई थी, एक पहाड़ी दर्रे पर। परवेज़ मोरचा लगाये दुबका बैठा था। उसके सामने दूसरे दर्रे पर रहमत खां मोरचा जमाये बैठा था। दोनों एक ही देश के रहने वाले थे। एक बारामूले का खोजा था दूसरा पुंछ का सुधन और अब दोनों एक दूसरे की जान के प्यासे हो रहे थे।

परवेज़ बोला "मुझे तुम्हारे मनोहर गीत नहीं चाहियें। मेरे सामने जलता हुआ। बारामूला है। मेरी छोटी बहन की लुटी हुई इसमत है। खम्भे पर लटकी हुई मकबूल शेखानी की लाश है। मेरे सामने से हट जाओ।"

दूसरे दर्रे से रहमतखाँ ने कहा "मैं रियासत पुँछ का सुधन हूं। पलंदरी का रहने वाला। जिसे मेरे दुश्मनों ने बमबारी करके तबाह, बर्बाद कर दिया है। जानती हो हम लोग सभ्यता और कलचर के नाते पंजाबी मुसलमानों का एक अङ्ग हैं। परवेज़ से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं, मेरे सामने से हट जाओ।"

आर-पार परवेज़ और रहमत खाँ के मोरचे थे। बीच में नीलम के नगीने की तरह चमकती हुई एक वादी थी। मैं नीचे वादी में उतर गई लेकिन वहाँ कोई न था। घर उजड़े और वीरान पड़े थे। खेतों में बैल हल से जुते-जुते मर गये थे। चश्मों पर पानी के घड़े भरे हुए थे लेकिन वे चरवाहियां कहां थीं जो उन्हें अपने सिरों पर उठाये, अपनी भीगी पलकें झुकाये घूमती हुई पगडंडी के मोड़ पर मुर्गाबियों की डार की तरह उड़ी-उड़ी चली जायें। मैं अकेली ही खड़े-खड़े एक चश्मे के किनारे दफ़ बजाने लगी। इतने में दो व्यक्ति राइफ़ल लिये कहीं से निकल आये। एक ने मेरा हाथ जोर से पकड़ लिया।

मैंने कहा, "मुझे छोड़ दो, मैं तुम्हें बहुत सुन्दर गीत सुनाऊँगी, दफ़ पर नाचूंगी।"

वह एक बड़ी निर्दयतापूर्ण हँसी हँस कर बोला "हां, हां, गीत भी सुनेंगे, अभी पहले तुम्हारी चीखें तो सुन लें।"

फिर दूसरे आदमी ने भी मुझे पकड़ लिया और अपनी ओर घसीटने लगा और मैं उन दोनों के हाथों में एकाएक कागज़ के एक पुर्ज़े की तरह टुकड़े-टुकड़े हो गई और चुरमुरा कर ज़मीन पर गिर पड़ी और वे मुझे इस प्रकार रूप बदलते देख कर बड़े घबराये और वहाँ से भाग गये।

इसी खैंचातानी में मेरा फ़र्न फट गया और घुँघरू टूट गये और मेरे माथे की बिंदिया नोच डाली गई—यह देखो, मैं अब तुम्हारी वादी में कभी नहीं जाऊँगी।

वह सिर झुका कर रोने लगी।

मैं बहुत देर तक परेशान रहा। वह बहुत देर तक सिसकियां भरती रही। आखिर मैंने उसे ढारस देते हुए कहा "अच्छा मैं तुम्हें वहां नहीं भेजता। आज हमारे नेता ताजमहल होटल में आने वाले हैं। मैं तुम्हें रेलवे का क्लर्क बना कर वहां भेजता हूं। हां, हमारे नेता का सम्मान ध्यान में रहे। वहां सभी ऊंचे वर्ग के लोग होते हैं। वे लोग सभ्य आचारों का बहुत ध्यान रखते हैं। कहीं कोई ऐसी वैसी बात न हो जिस से मेरी कला बदनाम हो जाये।"

मैं ने कहानी को चालीस वर्ष का रेलवे का क्लर्क बना दिया। नाम मिलवांकर, जो दादर केबिन नम्बर १ में काम करता है, जिस के दांत कत्थई रंग के हैं और जो चूना और तम्बाकू मिला कर खाता है, जिस के पांच बच्चे हैं, एक पत्नी है, एक बूढ़ी मां है, दो जवान बहनें हैं जिन की अभी शादी नहीं हुई। पत्नी का एक भाई है जो दोनों आंखों से अंधा है और जो उसे दहेज़ में मिला था। मिलवांकर का

बाप भी रेलवे में काम करता था। इसी लाइन पर। और अब मिलवांकर भी काम करता है। उसे यहां काम करते हुए पच्चीस वर्ष होगये हैं लेकिन वह आज तक कभी ताजमहल होटल नहीं गया। ताजमहल होटल तो एक ओर वह कभी बम्बई सेंट्रल के रेलवे रेस्तोरां में बैठ कर खाना नहीं खा सका। इसी लिए मैं आज उसे ताजमहल होटल में भेज रहा था, जहां हमारे नेता आने वाले थे।

पुराना साल जा रहा था, नया साल उत्पन्न हो रहा था। यह रात बड़ी सुहानी थी। मैंने लगभग सात बजे ही मिलवांकर को ताजमहल होटल भेज दिया और स्वयं सैर करने समुद्र के किनारे चला गया। वहां बहुत देर तक टहलता रहा और सीप और घूंघों को इकट्ठा करके उन का मकान बनाता रहा और फिर उस के भरोसे पर किरायादारों से पगड़ी वसूल करता रहा और फिर समुद्र की एक बहुत बड़ी लहर आई और मेरा घरोंदा बहा कर लेगई और मेरे वस्त्र भी गीले कर गई और मैं उसी प्रकार निराश सा होकर वापस घर लौट आया। रास्ते में किनारे के निकट मांझी अपनी नावों के बादबान ठीक कर रहे थे। रात को समुद्र में मछलियां पकड़ने जायेंगे। एक बूढ़ा अपने कुत्ते से बातें किये जा रहा था। एक जोड़ा रेत पर एक दूसरे से चिमटे लेटा था। परे पुलिस का सिपाही सिग्रेट पी रहा था। दूर नारियल बेचने वाला पीठ मोड़े अपनी हांक लगाये जा रहा था। एकाएक आकाश पर सब सितारे खिलखिला कर हंस पड़े। चंचल बच्चों की तरह जैसे वे मेरी टूटी हुई चप्पल, मेरे फटे हुए पायजामे और रेत में सनी हुई पुरानी कमीज़ का मज़ाक उड़ा रहे हों। और मैं जल्दी-जल्दी से क़दम उठाता हुआ घर चला आया और मैंने मन में सोचा कि अब मैं कभी इतना बुरा लिबास पहनकर तट पर नहीं जाऊंगा। आज नये वर्ष का 'जन्म दिन' है और आज सब लोग मेरे वस्त्र देखते हैं, मेरा दिल नहीं देखते।

मैंने दरवाज़ा खोला और वस्त्र बदले और खाना खाकर एक अच्छी सी पुस्तक हाथ में ले बिस्तर पर लेट गया। देर तक उसे पढ़ता रहा। ग्यारह बज गये। बारह बज गये लेकिन मिलवांकर वापस न आया। मैंने मुस्करा कर मन ही मन में कहा। आज पहली बार ताजमहल होटल गया है। इतनी शीघ्र काहे को लौटेगा। इतना सोच मैं ने पुस्तक को बन्द कर दिया। बत्ती बुझा दी और बड़े मज़े से नरम नरम गुदगुदे बिस्तर पर पांव फैला कर सोगया। न जाने कितनी देर तक सोता रहा। एकाएक टेलीफ़ोन की घंटी बजी। मैं ने बत्ती जला कर देखा। घड़ी में तीन बज रहे थे। यह इस समय कौन टेलीफ़ोन कर रहा था, मैं ने क्रोध से चोंगा उठाया और तीखे स्वर में कहा "कौन है ?"

"मैं हूं मिलवांकर।"

"अरे, कहां हो अभी तक। ताजमहल से बोल रहे हो ?" मैंने पूछा।

"नहीं, मैं कोलाबे के थाने से बोल रहा हूं।" मिलवांकर ने बड़ी घबराहट में उत्तर दिया। "पुलिस ने मुझे गिरफ्तार कर लिया है और बिना ज़मानत रिहा नहीं करती, आप अभी आजाइये।"

खैर साहब, मैं रात के तीन बजे उठा और भागा-भागा थाने गया और उसे ज़मानत पर छुड़ा लाया। उसकी निकर फटी हुई थी और उसका मुँह सूजा हुआ था और उसके चेहरे पर खराशें पड़ी हुई थीं।

मैंने पूछा "तुम्हें पुलिस ने मारा है ?"

"नहीं।"

"तो क्या मुँह बिल्लियों से नुचवाते रहे हो ?"

वह बोला "हां बड़ी शरीफ़ बिल्लियां थीं, बड़ी सुन्दर साड़ियां पहने हुए थीं और शराब में धत थीं।"

मैंने कहा "तुम थाने में कैसे पहुंच गये, मैंने तो तुम्हें ताजमहल होटल भेजा था।"

मिलवांकर बोला—"जभी तो—आपने मुझे पहले बता दिया होता तो मैं अपने दो-चार साथियों को ले जाता। पहले तो वे लोग मुझे भीतर ही नहीं घुसने देते थे क्योंकि मेरा लिबास बहुत शानदार न था। निकर, यह कमीज़, यह जूता, वहाँ के तो बैरा लोग भी बहुत अच्छा लिबास पहनते हैं। यह आपने क्या किया? अगर आपको मुझे वहाँ भेजना ही था तो कोई सूट ही दिया होता या कोई अच्छा सा हिन्दुस्तानी लिबास। या खद्दर का श्वेत उज्ज्वल कुर्ता और धोती और जवाहर जैकट और सिर पर गांधी टोपी। आजकल यह ड्रैस भी खूब चलता है वहां। सुना है किसी ज़माने में इस ड्रैस वाले को वहाँ घुसने नहीं देते थे लेकिन आज रात को तो वहाँ इस ड्रैस का बहुत आदर हुआ।" मैंने कहा "तुम अपनी बात सुनाओ।"

मिलवांकर बोला "पहले तो उन लोगों ने मेरे वस्त्रों, मेरी शकल सूरत का विरोध किया लेकिन चूंकि मेरी सीट बुक थी और ठीक उसी समय नेता जी सीढ़ियां चढ़ते आ रहे थे इस लिए बटलर ने मुझे अपनी परेशानी में अधिक देर तक न रोका। उसकी नज़र नेता जी पर पड़ गई और मैं हॉल के भीतर हो लिया और अपनी सीट पर जा बैठा। मेरे मेज़ पर दो जोड़े पहले से बैठे थे। एक पारसी जोड़ा था, एक गुजराती, दोनों शराब पी रहे थे।

वेटर ने आकर मुझ से पूछा "आप क्या पियेंगे"?

मैंने कहा "ठंडा पानी।"

वेटर नाक सिकोड़ कर गरदन ऊंची उठाकर अपनी बो संवारता हुआ चला गया। वे दोनों जोड़े मेरी ओर देख कर घृणा से मुस्कराये, फिर उन्होंने गरदन मोड़ कर हैकमैन ब्वायज़ के बैंड की ओर देखा जहाँ से एक नया संगीत फूट रहा था और जहाँ श्वेत और सुर्ख लड़कियां हेवला-देवला हवाई नृत्य कर रही थीं। ये लड़कियां दो एक जगहों के अतिरिक्त, बिल्कुल नंगी थीं और बार-बार कूल्हे घुमाती

फिरती थीं। अभी डान्स शुरू ही हुआ था कि नेता जी ने प्रवेश किया और एकाएक नृत्य रुक गया और 'बंदे मातरम' का संगीत गूंजने लगा।

फिर नेता जी को हार पहनाये गये।

तालियां बजाई गईं

ऐड्रेस पेश किया गया।

फिर तालियां बजाई गईं।"

"ठहरो, ठहरो" मैं ने मिलवांकर को टोक कर कहा "यह तो तुम ने बताया ही नहीं कि ऐड्रेस में क्या था, उत्तर क्या दिया गया?"

मिलवांकर ने बड़े घृणापूर्ण स्वर में कहा "एड्रेस में वही था जो ऐसे एड्रेसों में होता है। यानी नेता जी, आप बड़े तीस मारखां हैं। अगर आप न हों तो देश डूब जाय, प्रलय आ जाय। यह हमारा अहोभाग्य है कि देश की बागडोर आप ऐसे इत्यादि प्रकार के बुद्धिमानों के हाथ में है, वगैरा वगैरा। और उत्तर भी इसी प्रकार का था यानी आप लोगों ने मेरा बहुत ही आदर सम्मान किया है। वास्तव में मैं बड़ा आदमी नहीं हूँ। बड़ी-बड़ी समस्याओं की छाया मुझ पर पड़ रही है अन्यथा अभी देश के सामने बहुत से बड़े काम हैं। ऐसे बड़े काम जिनके सम्बन्ध में बड़े सोच-विचार की आवश्यकता है। इस समय देश के सामने बहुत बड़ा crisis है और अब मैं नहीं जानता कि क्या होगा? आगे क्या होने वाला ? कौन इतनी बड़ी जिम्मेदारी ले। इतना कह सकता हूं कि आप लोगों को मुझ पर विश्वास रखना चाहिये और देश में शान्ति रखनी चाहिये। इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि आप लोग शराब न पीयें। सिनेमा हॉल में सिग्रेट न पीयें और बारह बजे के बाद कम्बल ओढ़ कर सो जायें। नहीं तो देश तबाह हो जायेगा और चीन की तरह यहां भी समाज-वाद फैल जायेगा। इसलिये पूंजी-पतियों को चाहिये कि वे सरकार का साथ दें और मैं मजदूरों को चेतावनी देता

हूं कि वे हड़तालें न करें, पैदावार को बढ़ायें।' उस समय मुझ से न रहा गया। मैंने अपनी सीट से उछल कर कहा "मैं आप से एक प्रश्न करना चाहता हूँ?" सब लोग मेरी ओर घूर-घूर कर देखने लगे। बैठ जाओ, बैठ जाओ की आवाज़ें आने लगीं।

मैंने कहा "नेता जी, मेरा वेतन चालीस रुपये है।"

एक आदमी बोला "चालीस रुपये वाले आदमी का ताज में क्या काम?"

"इसे बाहर निकाल दो, इसे बाहर निकाल दो" बहुत से सज्जन एक दम चिल्लाये।

मैंने कहा "नेता जी, आप मज़दूरों के बड़े हितैषी बनते थे। आज आपको ताजमहल में आने का अवकाश है। विश्वविद्यालायों से ऊट-पटांग डिगरियां लेने का समय है, व्यर्थ के सम्मेलनों में शामिल होने की फ़ुर्सत है। आप को रेलवे के एक निर्धन क्लर्क का जीवन देखने की फ़ुर्सत नहीं। ज़रा दो मिनट के लिए मेरी कहानी सुन लीजिये ना?"

"देखिये मैं अभी आपको बताये देता हूँ। मेरा नाम मिलवांकर है। मैं दादर कैबिन नम्बर १ पर......"

"बैठ जाओ, बैठ जाओ, चुपके बैठे रहो" दो चार व्यक्तियों ने मुझे पकड़ लिया।

मैंने चीख़ कर कहा "नहीं मैं नहीं बैठूंगा। मैं अपनी कहानी सुना कर रहूँगा। मेरे कपड़े फटे हुए हैं। मेरे घर में बच्चे भूखे हैं। मेरी दो बहने हैं जिन की मुझे शादी करनी है और मेरा वेतन चालीस रुपये है। मैं तो नेता जी को अपनी कहानी सुना कर रहूँगा। वह तो स्वयं कहते हैं कि वह......

इस पर बहुत शोर मचा और मेरी मेज़ पर जो दो औरतें बैठी थीं उन्होंने क्रोध में आ मेरा मुँह नोच लिया और दो एक भद्र पुरुषों

ने मुझे पीटा भी। पुलिस आ गई और उसने मुझे गिरफ्तार कर लिया और कोलाबे के थाने में ले गई।

मैं सिर हिला कर हंसने लगा, "तो तुम्हारी कहानी वहां भी किसी ने नहीं सुनी।"

मिलवांकर ने क्रोध में आ कर कहा। आप ने मुझे वहां भेजा ही क्यों था? वहां इन बातों का किस के पास समय है। आप ने बेकार मुझे उन के रंग में भंग डालने के लिये भेज दिया लेकिन इस से कुछ हुआ थोड़े ही। थोड़ी देर के लिए गड़बड़ हुई, फिर सब लोग हंसने लगे। जब मैं हॉल से बाहर निकाला जा रहा था सब लोग मुझ पर हंस रहे थे और हैक मैन के बैंड ने एक नया हवाई नृत्य आरंभ किया था।

मिलवांकर ने सिर हिला कर कहा "अब मैं वहां कभी नहीं जाऊंगा" और वह मेरी ओर पीठ मोड़ कर अलग बैठ गया—रूठे हुए बच्चे की तरह।

मैं बहुत देर तक सिर खुजाता रहा। कुछ समझ में न आया। अब क्या करूं, उसे कहां भेजूं? आखिर सोच-सोच कर मैंने मस-खरों वाला लिबास तय्यार किया और उसे कहानी को पहनाया। मैंने कहानी की ऊंची नाक को मोटा कर दिया। उसके सुर्ख ओठों को श्वेत कर दिया उसके माथे पर एक बहुत बड़ा मस्सा लगाया और उसके सिर पर एक लम्बे फुंदने वाली तिकोनी टोपी पहना कर उससे कहा "जाओ, जहाँ पर नन्हे-नन्हे बच्चे खेलते हैं और निश्चिंत और सरल आत्मायें मुस्कराती हैं। वह तुतलाता हुआ नन्हा संसार तुम्हारी प्यारी-प्यारी कहानियां सुनेगा और जीवन में फिर से स्वर्ग सी बहार आ जायेगी। जाओ मसख़रे जाओ। तुम रीछ की तरह नाचो, मदारी की तरह डुगडुगी बजाओ और बन्दर की तरह नाच कर बच्चों के संसार में हँसी के फव्वारे उछाल दो।"

मसख़रा अपनी गधे की खोल संभालता हुआ मुझ से विदा हुआ और कोई पांच छः दिन तक वापस नहीं आया। मैंने सोचा नियम-विरुद्ध अब के कहानी लम्बी होगई, मैं तो इतनी लम्बी कहानियां नहीं लिखता हूं। अब के कहानी को क्या हुआ जो इतनी लम्बी हो गई। अभी तक नहीं आई। हफ़्ता होने को आया। इतवार के दिन जब मैं प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक में शामिल होने जा रहा था किसी ने दरवाज़े की कुंडी खटखटाई। मैंने देखा मसख़रा है। लेकिन तिकोनी टोपी गायब है। नाक मोटी नहीं है। माथे का मस्सा ग़ायब है। गधे की खोल नहीं पहिन रखी बल्कि सिपाहियों वाला लिबास पहने दरवाज़े पर खड़ा लैफ़्टराइट कर रहा है।

मैंने डरते डरते दरवाज़ा खोला।

"क्या मुझे गिरफ़तार करने आये हो?" मैंने कहानी से पूछा।

मसख़रा मेरे सामने बैठ गया, राइफ़ल थाम कर बोला "हां कुछ ऐसी ही बात है।"

"क्यों क्या हुआ?"

मसख़रा चुप रहा। बहुत देर के बाद बोला:—

"अब के मैं बहुत खुश था, सोचता था लोगों को खूब खूब हंसाऊंगा। स्टेशन के निकट ही मुझे सातआठ साल का एक बच्चा मिल गया। वह मेरी ओर बड़े ध्यान से देख रहा था। मैंने उसके पास जाकर कहा "कहानी सुनोगे? बड़ी अच्छी कहानी है मेरे पास।"

वह बोला "मेरे पास कहानी सुनने का समय नहीं है, क्योंकि मेरे मां-बाप मर चुके हैं और अब मैं रेल में संतरे की गोलियां बेचता हूँ। मेरी एक छोटी सी बहिन भी है, उसे देखोगे?"

वह मुझे स्टेशन से बाहर ले गया। एक कोने में एक बच्ची

पड़ी थी और चुपचाप हाथ फैलाये भीख मांग रही थी।

वह बोला, जब हम लोग कराची में रहते थे तो रात को बड़ी अच्छी अच्छी कहानियां सुनते थे। अब हमारे पास कहानी सुनने के लिए समय नहीं है। संतरे की गोलियां लोगे? एक आने में छः, एक आने में छः, एक आने में छः। फिर धीरे से बोला, अगर तुम अपना लिबास मुझे देदो तो मेरा ख्याल है कि बहुत से लोग मुझ से संतरे की गोलियां खरीदेंगे।

मैं वहां से भाग निकला।

वहां से निकल मैं एक गली में घुस गया। कुछ लौंडे पतंग बना रहे थे। मैंने कहा, मैं तुम्हें रंगरंग की पतंगों को ऊँचा, सब से ऊँचा उड़ाने का तरीका बताता हूं। यह तरीका मैंने केशर देश की परी से सीखा था। केशर देश की परी...

मैं यहीं तक कहने पाया था कि उन में से एक लड़का बोल उठा "बड़े मियां! क्यों हमारा समय खराब करते हो? हम लोग पतँग बनाते हैं, पतँग उड़ाते नहीं हैं। वे दूसरे बच्चे होते होंगे। हम लोग अगर शाम तक पचास पतंग नहीं बनायेंगे तो भूखे मर जायेंगे। तुम यहां से नौ दो ग्यारह हो जाओ।

अतएव मैं वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया और एक घर के भीतर घुस गया। बाहर दरवाजे पर ताला था लेकिन मेरे लिऐ क्या रोक टोक थी। मैं भीतर जा घुसा क्योंकि घर के भीतर से बराबर चिल्लाने की आवाज़ें आरही थीं। भीतर जाकर मैंने देखा कि एक काना बच्चा है। बस चार एक वर्ष का होगा और वह एक दूध पीती बच्ची को बेतरह पीट रहा है।

मैंने उसे कहा, बच्चे बच्चों को प्यार करते हैं, पीटते नहीं हैं।

"यह रोती है," बच्चे ने उत्तर दिया।

"यह क्यों रोती है?" मैंने पूछा।

"यह भूखी है।"

"इसकी मां कहां है ?"

"मां कारख़ाने गई है।"

"बाप कहां है ?"

"बाप भी कारख़ाने गया है।"

"मां इसको कारख़ाने क्यों नहीं ले गई ?"

"मां काम करती है। मां कारख़ाने गई है। यह भूखी है। मैं भी भूखा हूँ। यह रोती है, मैं इसे मारता हूँ।"

मैंने कहा, "इसे मारो नहीं, देखो फिर हम तुम्हें बहुत अच्छी कहानी सुनाते हैं। एक था राजा।"

"राजा लोग बहुत बुरे होते हैं।" लड़के ने कहा।

"तुमसे किसने कहा ?" मैंने पूछा।

"बापू कहते हैं। राजा अच्छे नहीं होते, वे भूखा रखते हैं।"

"अच्छा तो हम तुम्हें परियों की कहानी सुनाते हैं, वहां भूख नहीं होती। परियों का देश बहुत सुन्दर है, वहां बड़े सुन्दर मकान होते हैं। वहां शहद और दूध की नहरें बहती हैं।"

"अहा-हा, दूध ! हमें दूध ही तो चाहिये।" लड़का उछल पड़ा।

"तुम कहानी तो सुनो।"

"नहीं, हमें दूध दो। हमारी बहिन दूध मांगती है। यह रोती है, हम इसे मारते हैं।"

"और इन परियों के देश में एक दिन प्रेम का राजा........."

"हमें प्रेम का राजा नहीं दूध चाहिये। प्रेम का राजा नहीं सुनते हम। दूध, दूध, दूध......"

लड़का ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा और अपनी नन्ही बहिन को पीटने लगा। मैं जल्दी से वहां से निकल आया।

फिर वहां से निकलकर मैं बहुत-सी जगहों पर गया। बहुत-सी

गलियों में, बाज़ारों में, गली-कूचों में, खेतों में, जंगलों में, शहरों में, देहातों में। किसी बच्चे ने मेरी कहानी नहीं सुनी। वे सब परेशान हो चुके हैं। बूढ़े होते जा रहे हैं, और उनकी हँसी कुम्हलाये हुए फूल की तरह मुरझाकर धूल में गिर चुकी है।

"तो अब तुम यह सिपाही का लिबास पहन कर क्यों आए हो?" मैंने पूछा।

"इसलिए कि अब मैं लड़ना चाहता हूँ। उस हँसी के लिए लड़ना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि चीन में एक किसान है। 'ली', उसका नाम है। वह उस हँसी के लिए लड़ रहा है। और मैंने सुना है कि इन्डोनेशिया में एक कान खोदने वाला नूरउद्दीन है और वह उसके लिए लड़ रहा है, और मैंने सुना है कि यूनान में एक लोहार है मारकास, वह उसके लिए लड़ रहा है और मैंने सुना है कि बर्मा और मलाया और हिन्दचीनी के घने जंगलों में छोटे-छोटे बच्चे भी उसके लिए लड़ रहे हैं। मैं भी उस हँसी के लिए लड़ूंगा। अब मैं एक सुन्दर नर्तकी नहीं बनना चाहता। हँसाने वाला मसख़रा भी नहीं बनना चाहता। निर्बल आवाज़ उठाने वाला क्लर्क भी नहीं बनना चाहता। मैं चाहता हूँ कि मुझे एक मोटी-सी कारतूस की गोली बना दो और मुझे वहां भेज दो जहां मनुष्य मनुष्य पर अत्याचार के विरुद्ध लड़ रहा है।"